नम: सिद्धेभ्य

* श्री *

वाक्य जाल

लेखक : ब्रह्मचारी मूलशकर देसाई

प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन महिला मण्डल

नमकमण्डी, आगरा-३

वीर निर्वाण संवत् २४९३   लागत सेभी

वीक्षम संवत् २०२४   कम मूल्य १-५० पैसे

सन १९६७

पुस्तक मिलने का पता :—
श्री फूलचन्द जी बरवासिया
मंत्री श्री दिगम्बर जैन मन्दिर
धूलियागंज, आगरा-३.

मुद्रक :
श्री अशोककुमार जैन
महावीर प्रेस
किनारी बाजार, आगरा-३.

दो शब्द

वाक्य झाल लिखने का शतिप्रत विचार नहीं था किन्तु यह विक प क्यो हुआ यह बताने की जरूरत जलाना लिखता हूं।

श्रीमान माननीय प्रवरवक्ता ब्रह्मचारीजी महाराज चुन्नीलाल जी देसाई राजकोट निवासी मेरा सहोदर लघु भ्राता है। उसने अपने जीवन मे भातृ भाव कभी दिखाया ही नही है। वहीं चाल ब्रह्मचारी हुवा वाद भी रही।

मैंने सन् १९५० मे पंच लब्धि नाम की छोटी सी पुस्तक प्रकाशित करवाया। यह उनकी देखते ही कषाय की मात्रा भढ़क आया जैन मित्र में छपवा दी की यह पुस्तक मैं मूल संघ आम न्याय से बहुत ही वातें वितरीत है जिससे यह पढ़ने योग्य नही हैं। यह पुस्तक का दूसरासंस्करण सन् १९५२ में प्रकाशित कराने की ही इच्छा होने से जयपुर समाज ने श्री ब्रह्मचारी महाराज को पत्र लिखा कि यह पुस्तक मे कौनसी गलता है कृपया लिखे जिससे यह सुधार हो पावे क्योकि उसका दूसरा संस्करण छपवाना है किन्तु उसने पत्र का जबाब भी दिया नही।

आप अपना तारीख २७-१०-५५ के पत्र मे लिखने हैं कि आपकी भेदज्ञान नाम की कृति यही वाचना मिली पारावार मूल संघ आम्नाय से विरुद्ध भूलो देखने मे आई। ....जिस प्रकार भट्टारको की प्रति आज समाज मे झगड़ा की जड़ वन रही है उसी प्रकार भविष्य में आपकी कृति अज्ञानी मे झगड़ा की जड वन जावेगी इसमें लेशमात्र शंका को स्थान नही है। देखिये यहा कया लिखते है।

सन् १९५७ मे मेरा चातुरमास परतापगढ राजस्थान मे था। तब श्रीमान ब्रह्मचारी चुन्नीलाल जी महाराज का चातुर मास रामपुर मनिहारी जि० सहारनपुर उ० प्र० मैं था। हमने श्री जिनागम का प्रकासित करवाया था, उनको १ प्रति हमने श्री ब्रह्मचारी चुन्नीलाल जी महाराज को भेंट मे भेजी थी। उनमे मेरा लिखा दो शव्द पढ़कर वह स्वय अपने ता० २४-९-५८ के पत्र मे लिखते है कि आपका ता० २०-८-५८ का पत्र मिला। आपकी भेजी हुई जिनागम पुस्तक की प्रस्तावना पढी हृदयग्राही मालुम हुआ। दिगम्वर समाज ही अनव्यवस्था रूप प्रवृतिवाची वहुत खेद हुआ। पूज्य वर्णीजी का पक्ष व्या मोहता और त्यागियो मे वैर विरोध की भावना धनपपियो को महतका यथार्थ मे परमार्थ को रोकने वालो हैं।

आप पत्र मे लिखते है कि जिनागम की २० प्रति रेल पार्सल से भेज देना। मैंने एक भेद विज्ञान की पुस्तक लिखी है। वह आप प्रकाशित करवा देगे ! हमने लिखा, मैं प्रकाशित करवा सकता हू। किन्तु प्रथम मे पठ-कर उसमे जो सिद्धान्त विरुद्ध कथन होगा वह हम आप निर्णय कर लेवे वाद मे प्रकाशित करा सकता हू। आपने ता० ७-९-५८ के पत्र मे लिखा है कि आप पहले अवलोकन कर जावे और जो विषय मे आप सहमत न होते वही विषय विचारना पर रखी निर्णय हुआ वाद मे छपवाना ऐसा मारा भी मत है। हमने लिखा पुस्तक प्रशासित मे मेरा नाम रहेगा और आपको अमुक प्रति सभेट की जावेगी और पुस्तक के आप स्वामी नही हो। इतना लिखने से यह वात उनको मोष्ट न लगी और १७-?'-५८ के पत्र मे लिखते हैं कि मेरी पुस्तक भेद विज्ञान छपवाने से ही आप चिन्ता मत करना वह योग्य स्थान काल लब्धि से छप जायेगी। दरम्यान मे हमने पत्र लिखा है कि यदि आप मेरी लिखी पुस्तक का प्रचार करो तो विशेष लाभ होगा। यह पत्र के जबाव मे आप स्वयं लिखते

है कि आप निम्न प्रकार पुस्तक को पार्सल से भेज देवें। मैं प्रचार करूंगा बेचाण हुआ बाद रकम भेजी जावेगी। यही हमारी पुस्तक मूल संघ आम न्याय से बिरुद्ध थे तब, अब आप प्रचार क्यों करते हो ! पाठक बिचार करे ! हमने २६४) रुपये की पुस्तक भेज दी। आपने प्रचार भी किया और बची पुस्तक रेल पार्सल से भेज दी।

मेरी लिखी हुई तत्वसार पुस्तक पर से श्रीमान कपील भाई कोटडोया। हिम्मतनगर, गुजरात, रहिशने गुजराती भाषामे सन् १९६५ में अनुबाद कर पुस्तक प्रगट करवाय है वह पुस्तक की प्रति पंडित श्रीमान आदि को भेंट के रूप मे भेजी गई थी, उसी प्रकार एक प्रति श्री ब्रह्मचारी चुन्नीलालजी महाराज को दाहोद मुकाम भेजी थी और इस पुस्तक के विषय मे आपका क्या ख्याल है। वह पुछवाया था मेरी पुस्तक का अनुवाद देखकर श्रीमान ब्रह्मचारीजी महाराज की कषाय भभक उठी। उसने पत्र लिखा कि इसमे पारावार भूल है। इस पुस्तक को जला देना चाहिये। यह लिखना रमूलशंकर नरक मे जायगा। इत्यादि दु.ख की यह बात है पाराबार भूल लिखते है किन्तु मूल दिखाते नही है यही है आजके जमाना का स्थितिकरण अङ्ग।

श्रीमान पंडित माननीय ब्रह्मचारी जी चादमल जी चुडिवाल नागोर निवासी ने एक लेख जैन दर्शन पत्र में छपवाया की जैन गजट के सम्पादक श्री अजितकुमार शास्त्री ने ब्रह्मचारी मूलशकर देसाई की लिखी पुस्तक पर काफी समालोचना दी है तो भी निशुल्क वितरण की सूचना यह अपने पत्र मे क्यों प्रकाशित करता है। यह पुस्तक में सिद्धान्त के विरुद्ध वहुत वात है। यह लेख पढकर हमने प्रति शका में एक जबाव भेजा, किन्तु श्रीमान पडित जा लालबहादुर शास्त्री ने हमारा प्रतिकार प्रकाशित किया ही नही, यद्यपि हमने तीन-चार पत्र लिखे कि आप मेरा लेख क्यो नहीं प्रकाशित करवाते है। किन्तु जहा भावना ही नही है वहा प्रकाशित कैसे करेगा।

श्रीमान ब्रह्मचारी चुन्नीलालजी महाराज का चैत्र मास मे हिमतनगर को पधारना हुआ। श्री कपिल भाई ने इसी वार उनको वहुत समझाया कि आप ब्रह्मचारी मूलशकर का विरोध न करे और जो भूल हो आप लिखें वह अवश्य जवाव देंगे। किन्तु उनको तो विरोध ही करना है। मेरा विहार इडर होने वाला था इससे पहिले श्रीमान ब्रह्मचारी चुन्नीलालजी इडर पहुँच गये। परन्तु वहां गया वाद थोडे ही दिन मे उनके मुख पर लकुवा लग गया। मे इडर न जाय इस विषय मे एक पत्र श्रीमान कपिल भाई कोटडीया का आया और सूचना लिखी कि आप इडर जाओगे तो ब्रह्मचारो चुन्नीलालजी अवश्य आपसे विरोध करेंगे। हमाने सोचे जाने मे क्या वाधा है, इतना डरने से क्या लाभ है। हम इडर पहुँच गये और वह लकवाग्रस्त थे। तोभी दूसरे हो दिन दूपर के शास्त्र प्रवचन मे झगड़ा शुरू कर दिया। परन्तु हम फिर भी गम खा गये कुछ वोले नही। समाज भी यह व्यवहार देखकर दंग रह गई कि त्यागी मे भी इतनी कषाय ? यदि सिद्धान्त की चर्चा करना हो तो भी शान्ति से करना चाहिये। मूर्ख से मूर्ख मनुष्य की साथ भी ऐसा व्यवहार नही करना चाहिए, जैसा वर्ताव श्रीमान ब्रह्मचारी चुनीलालजी ने मेरे प्रति किया। मै तो एक हफ्ता वाद विहार कर गया।

हिम्मतनगर मे चातुर मास करने को आया वाद मे श्रीमान पडित मान्यवर ब्रह्मचारीजी चादमलजी चुडिवाल की लिखी पुस्तक जैन तत्व मीमासा की शमिक्षा वहाँ पढने को मिल गई। पढते वहुत ही सिद्धान्त के विरुद्ध वातें देखी, एक पत्र श्रीमान ब्रह्मचारी चांदमल जी को नागोर लिखा कि आप लिखी पुस्तक के वारे मे कुछ शका भेज सकता हूँ आप समाधान करेगे। जवाव आया अवश्य समाधान होगा। और पत्र मे लिखा कि आपका साहित्य जिनागम से वहुत अंशों में प्रतिकुल है। किन्तु कौनसो वात विरुद्ध भासति है यह लिखते ही नही है। तव खुलासा कैसे दिया जाय।

हमने जैस तत्व मिमांसा पर समि क्षाये जो भूलें देखिली लिखकर भेजा था। तीन मास वाद समाधान आया किन्तु यह समाधान में केवल कटु भाषा के सिबाय और कुछ नही। ब्रह्मचारी जी की भाषा अवश्य मीष्ट होनी चाहिए। क्योंकि यह तो वीतराग चर्चा है और बीतराग चर्चा मे शान्ति आनी चाहिये किन्तु वह शान्ति दूर ही रही।

ब्रह्मचारी चुन्नीलालजी की लिखी पुस्तक श्रावक व्रत विधान देखने को मिली उनमे लगभग पचास भूल निकली होगी। ब्रह्मचारी को पत्र लिखा, आप इस विषय में खुलासा करे। किन्तु जवाब आया कि आपको प्रश्न पूछनेकी खुजती क्यो उठती है? जवाब दिया ही नहीं। अपनी गलत कल्पना से दूसरे जीबों का शास्त्र देखेगे तो अवश्य भूल मालुम पडेगी। किन्तु यथार्थ में किसकी भूल है यह तो जब शान्ति से बेठकर चर्चा करे तब ही मालुम होगा। किन्तु यह शान्ति कहाँ से? केबल ज्ञान का अजिर्ण हो रहा है। मेरा जैसा वर्तमान में कोई ज्ञानी नही है।

श्रीमान ब्रह्मचारी चुन्नीलाल जी ने लिखी दूसरी पुस्तक सम्यक्त्व सुधा देखने को मिलो उसमें वहुत जगह पर मूल गाथा से विपरीत भावार्थ है। प्राय.कर भावार्थ मे भूल है लगभग १५० भूल निकली। इतनी भूल का समाधान श्रीमान ब्रह्मचारी चुन्नीलाल जी खुलासा क्या करेंगे। यही सोचकर एक पुस्तक लिखना और उसमे सिद्धान्त विरुद्ध है जो बाते है यह लिखना यह विचार आने से ही वाक्य जाल नाम की पुस्तक प्रकाशित हुआ है। यह एक सिद्धान्त चर्चा रूप पुस्तक बन-जाने से जीवो को बिशेष लाभ होगा यह सोचकर उनको प्रकाशित करवाते है। पाठकगण इसे शान्ति से पढे और बिचार करें। तत्व को निर्णय करे यही मै चाहता हूँ। यदि मेरी कोई गलत दृष्टि में आवे तो अवश्य मुझको लिखने का कष्ट करे। मैं

उनको धन्यवाद दुंगा। हीन ज्ञानधारियो की भूल होना सम्भव है किन्तु यह भूल सुधारना वही वडी वात है। ज्ञानी जीव, जिज्ञासुजीव भुल निकलने से आनन्द मानते हैं जब असानी को भल दिखाने से वह दुःखी हो जाते है यह दोनो मे अन्तर है।

समाज सेवक ·

ब्रह्मचारी मूलशंकर देसाई

श्री दिगम्बर जैन महिला मण्डल नमकमण्डी, आगरा
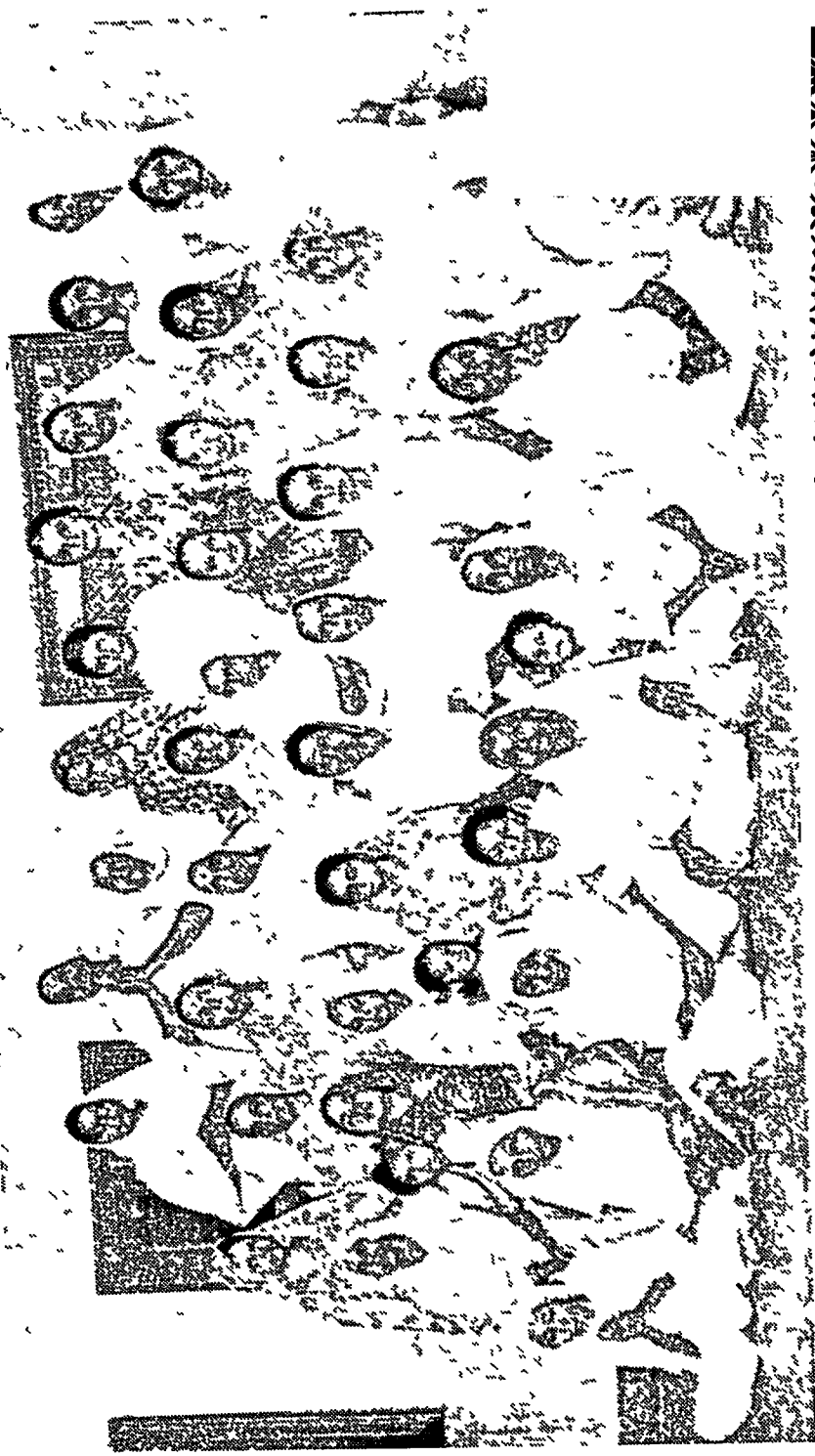
आगरा शहर में दिगम्बर जैन मन्दिर सताइस है और चैत्यालय जी अदाज दश है। दिगम्बर जैन घर की वस्ती अदाज दो हजार से विशेष है। तोमी शास्त्र सभा केवल दो-तीन मन्दिर जी में ही होती है। आगरा मे जैन स्कूल जैन हाई स्कुल जैन हाई सैकेन्ड्री स्कूल जैन डिग्री कालेज होते भी यहा जैन धर्म की पढ़ाई केवल नाम मात्र है। नमक मन्डी में एक जैन मन्दिर है जिसमे अदाज सो घर जैन के है विशेषकर अग्रवाल जैन है जो व्यापारी है धन सम्पत्ति से सुखी है 'कन्तु दु.ख की बात है कि पुरुष समाज की धर्म मे रुची नही है तव जुवान भी धर्म से उदासीन है। बहुत लोग तो दर्शन करने को भी श्री मन्दिरजी मे आते ही नही किन्तु स्त्री मण्डल में अनोखी भावना है। जिससे वहा श्री दिगम्बर जैन स्त्री मण्डल की स्थापना हुई हैं। यही स्त्री मण्डल ने अपना पुराना मन्दिर जी की रुपए पच्चीश हजार केवल स्त्री मंडल ही से चन्दा कर मन्दिर का जोर्णोद्धार करवा दिया मन्दिरजी की शोभा अपूर्व बढा दी है। यही स्त्री मंडल के कारण वहां श्री महावीर जैन पाठशाला भो चलती है। इतना ही नहीं अपितु स्त्री मंडल ने अष्टमी चतुर्दशी के दिन श्री मन्दिरजी में कीर्तन का भी प्रबन्ध किये है जिससे अनेक स्त्रीयां अनेक प्रकार के भजन आदि जानती है। यह सब यश श्रीमती चन्दादेवी धर्मपत्नी लाला दाउदयाल जी की ही है। वही यही मंडल की अध्यापिका कहो या प्राण कहो। विशेष उनका उपयोग धर्म प्रवृत्ति में ही जाते है। तन-मन-धन से समाज की सेवा वडे ही प्रेम से कर रही है जो धन्यवाद को प्राप्त हैं। यही स्त्री मंडल की ओर से यह पुस्तक प्रकासित हुई है। जो धन्यवाद के पात्र है। गुजरात में धर्म की रुची है किन्तु ज्ञान दान की ओर रुचि नही है। पाठशाला जहां थी वहा वन्ध होने लगो है। पचकल्याणीक में लाखों रुपये लगा देते है इस विषय में प्रभावना वहुत है किंतु ज्ञान की ओर भावना ही नही है यह दु:ख की वात है। ज्ञान की प्राप्ति बिना मन्दिर जी की रक्षा कोन करेगा ! समाज सेवक :

न०	विषय	पृष्ठ
९–केवली निश्चय और व्यवहार से कैसे देखते है		२७
१०–प्रथम निश्चय सम्यग्दर्शन होते है !		२०
११–कर्म का आत्मा मे किस प्रकार से अभाव है		३२
१२–अन्योन्य अभाव का क्या स्वरूप है		३२
१३–क्या एक गुण दूसरे गुण के साधक है !		३४
१४–क्या व्यवहार नये अभूतार्थ है ।		३४
१५–क्या द्रव्य ओर गुण शुद्ध रहते है ।		३५
१६–क्या दृष्टि निमिताधीन होती है ।		३६
१७–क्या पुन्य भाव हैय ही है !		३७
१८–क्या हिसा, झूठ, चोरी कुशल परिग्रह रूप निवृति भाव आसव है !		३९
१९–बुद्धि पूर्वक पुन्य भाव से बन्ध पडते है !		३९
२०–बुद्धि पूर्वक पुन्य भाव कर्म काटते है किन्तु उनसे बन्ध होते ही नही है		४०

न०	विषय	
२१–पुन्य भाव कैसे कर्म को काटते है !		४३
२२–पुन्य भाव के प्रसाद से ही वीतरागता आती है		४३
२३–पुन्य भाव की महिमा		४५
२४–क्या कानजी स्वामी मोक्ष मार्ग प्रकाशक की बातें मानते है		४८
२५–सम्यग्दर्शक होने मे किसकी बाणी निमित्त पड़ती है		४९
२६–नियमसार गाथा ५३ का गलत पद्य		५१
२७–क्या निगोदिया अपना पुरुषार्थ से मनुष्य वन पाता है		५१
२८–नाम कर्म सत् का व्यय और असत् का उत्पाद करते है !		२३
२९–क्या निश्च । सम्यग्दर्शन छद्मस्थ के ज्ञान गम्य है !		५४
३०–अव्रती को नमस्कार करना विनय मिथ्यात्व है		५४
३१–कानजी स्वामी अपने पेर पुजाता के वह विनय मिथ्यात्व है ।		५५

ब्रह्मचारी चादमल जी साहिब की लिखी जैन तत्व मीमांसा की समीक्षा मे जानने योग्य बातें—

नं०	विषय	पृष्ठ
१	निमित्त नैमितिक सम्बन्ध और निमित्त उपादान सम्बन्ध दोनो का अलग विषय है	५६
२	क्रमबद्ध पर्याय और अक्रम पर्याय किसे कहना चाहिये।	६५
३	जीव पुद्गल को धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय गमन और स्थिर कराते हैं।	६३
४	सिद्ध परमात्मा अलोकाकाश मे क्यो नही जाते हैं।	६३
५	सिद्ध परमात्मा कौनसा भाव से ऊर्ध्व गमन करती है !	६४
६	चौथे गुण स्थान से सातवे गुण स्थानातक धर्म ध्यान वह व्यवहार है या निश्चय !	६६
७	चौथे पाचव गुण स्थान मे स्वावलम्बी धर्म ध्यान नही होते !	६७
८	व्यवहार धर्म ध्यान से आत्म स्वरूप की प्राप्ति होती है !	६६
९	द्रव्यलिंग प्रथम होती है या भावलिंग	६६
१०	क्या प्रथम कर्म आने का कारण हटाया जाता हैं !	७०
११	क्या धर्म-अधर्म आकाश और काल द्रव्य मे अक्रम पर्याय होती हैं।	७१
१२	मन्दिर मे जाते रास्ते मे बेहोश हो जाना क्रमबद्ध है या अक्रम।	७३
१३	औदयिक भाव क्रमबद्ध ही होगा	७३
१४	ससारी जीवो की क्रमबद्ध पर्याय नही होती है।	७३
१५	भाव इन्द्रिय दो प्रकार की है। १. लब्धि २. उपयोग उनमे क्रम-अक्रम कैसे !	७४
१६	क्या क्षायिक सम्यग्दर्शन के कारण से आयुबन्ध त्रुट सकते है !	७४
१७	परिक्षा पे पास नापास होना क्या ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम के आधीन है !	७[illegible]

सं० बिषय पृष्ठ सं० विषय

१८–रोग का अन्तरंग कारण कौन है ७५
१९–सम्यगदर्शन के प्राप्त होने में अन्तरंग कारण स्व है या पर है ७५
२०–सम्यग ज्ञान की प्राप्ति में अन्तरंग कारण ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोप शम है ! ७५
२१–मति श्रुत ज्ञान पूर्ण प्राप्त होवे या नहीं ! ७६
२१–भवितव्यता उपादान की योग्यता का नाम है ! ७७
२३–मोक्ष का कारण ध्यान रूपी निमित्त है ! ७७
२४–कालादि लब्धि के कारण कर्म में पलटना होता है ! ७८
२५–कर्म के उदय के कारण क्रमबद्ध पर्याय नाश हो जाती है ! ७८
२६–क्रमबद्ध पर्याय आगम और युक्ति से सिद्ध नही है ! ७८
२७–क्या ग्यारह चक्रवर्ती मोक्ष गये हैं ! ७९
२८–परभब की आयु बाध लिया बाद क्या अकाल मरण नहीं होता है ! ७९
२९–क्या दूरानदूर भव्य को देशना का समागम नही मिलता है !
३०–क्या उर्द्ध गमन स्वभाव पर्याय हैं ! ८०
३१–सर्बार्थसिद्धि देबोंके सतामी नरक तक देखने का निमित्त नहीं मिलता ! ८१
३२–राग द्वेष सुख दुःख पुग्द्ल का उदय के स्वाद है वह आत्मा से अभिन्न है। ८१ ८१
३३–लाभ किस कर्म के कारणों से मिलते है ! ८१
३४–शुद्धोपयोग की पूर्णता कौनसा गुण स्थान मे हो जाती है। ८२
३५–निमितो के अनुसार परिणमन क्रमबद्ध नही है। ८३

श्रीमान ब्रह्मचारी चुन्नीलालजी देशाई की लिखी पुस्तक श्राबक व्रत बिधान मे जानने योग्य विशेष बाते।

१–प्रथम किस का त्याग करना चाहिए ! ८४
२–अंतरग परिणाम की साथ बाह क्रिया का सम्बन्ध है या नहीं ! ८५

सं०	विषय	पृष्ठ
	३–अबुद्धि पूर्वक ग्रहण करेल नोकर्म वर्णा मे ममत्व छोडा जाते है।	८५
	४–क्या सब सम्यग्दृष्टि आत्माबुद्धि और अबुद्धि पूर्वक नोकर्म वर्गणा ग्रहण करेल नोकर्म वर्गणा मे निर्ममत्व है।	८६
	५–क्या नियम कम से कम छह मास का होना चाहिए।	८७
	६–रात्रि भोजन मे प्रथम किस का त्याग होना चाहिये।	८७
	७–एकाशन का क्या लक्षण है।	८७
	८–व्रत मे अबुद्धि पूर्वक दोष लग जावे तब क्या अतिचार है।	८८
	९–जुआ मे क्या अतिचार है।	८८
	१०–नमोस्तू किसको कहना चाहिये।	
	११–क्या मुनिराज के मूलगुणोमे भी परिवर्तन हो सकता है!	८९
	१२–प्रायश्चित अतिचार का या अनाचार का!	८९
	१३–आठ वर्ष के सब बालक अणुव्रत ग्रहण करते हैं।	९०
	१४–क्या सकल्पी हिंसा प्रमाद से होती है।	९०
	१५–व्रति श्रावक को कितनी कोटी से त्याग होना चाहिये।	९०
	१६–माता-पिता की सेवा बहुत पुन्य है!	९१
	१७–क्या अनुकम्पा उत्तम पुन्य है।	९१
	१८–क्या सम्यग्दृष्टि की कोई भी क्रिया मे इच्छा नही है!	९२
	१९–एक मे चौदह गुण स्थान में कोई जीव यथार्थ पालन नही करते है।	९४
	२०–भाव की निर्मलता से आत्म वीर्य बढते है या नही।	९४
	२१–अज्ञानकी निवृती ज्ञान का फल नही है।	९५
	२२–प्रथम वीतरागता या केवल ज्ञान।	९५
	२३–राग का अहित का ही माना कब समझा जाय।	९६
	२४–हिंसादि अव्रत भाव क्या मिथ्यात्व से पुष्ट होते हैं!	९६
	२५–क्या पूर्व कर्म का बन्ध अज्ञान का निमित्त है।	९७
	२६–क्या पुन्यभाव देहाश्रित है।	९८
	२७–क्या महाव्रतादि बाह्य क्रिया है!	९८
	२८–क्या महाव्रत पराश्रित भाव है!	९९

सं० विषय पृष्ठ

२९–शुभाशुभ भाव पुद्गल स्वभावी है ! १००
३०–शुद्ध निश्चय नय से आत्माकर्ता भोक्ता है या नही ! १०१
३१–भाव कर्म दो प्रकार के है ! १०२
३२–कर्म उदय से भाव और भाव से बन्धनतवमोक्ष कैसे होगा ! १०२
३३–व्रत तप बिना मोक्ष हो सकती है ! १०३
३४–क्या व्यवहार रत्नत्रय पाप मय है ! १०४
३५–क्या कर्म का उदय च्युति का कारण नही है ! १०५
३६–कषाय और मलीनता मे क्या अन्तर है ! १०६
३७–क्या कृष्ण लेश्या नरक गति का ही बन्ध करते है ! १०७
३८–लेश्या किसे कहते है ! १०७

श्रीमान ब्रह्मचारी चुन्नीलाल जी देसाई द्वारा लिखित पुस्तक सम्यक्त्व मे जानने योग्य सिद्धान्तिक बाते १८७ है जिसका अलग विषय देना अशक्य है देखे पृष्ठ ११० से २४७।

श्रीमान क्षुल्लकजी जिनेन्द्र कुमारजी वर्णी लिखित 'नयदर्पण' ग्रन्थ मे जानने योग्य विशेष-बातें। २४९

स० विषय

१–क्या निश्चय सम्यग्दृष्टि ही ज्ञान करने मैं बाह्य निमित्त होते है ! २५१
२–आत्मा ज्ञान स्वरूप होने से दर्शन चारित्र वीर्यादि ज्ञान स्वरूप है ! २५३
३–प्रत्यक्ष और परोक्ष ज्ञान की विचित्र परिभाषा २५४
४–प्रत्यक्ष ज्ञान स्वभाविक ग्रहण करते है और परोक्ष ज्ञान कृत्रिम ग्रहण करते है। २५५
५–ज्ञान अङ्गो का समुदाय है या अङ्ग है। २५६
६–अखण्ड को ग्रहण करे वह प्रत्यक्ष ज्ञान। २५७
७–श्रोताओ के ज्ञान पट पर वक्ता अनेकान्त चित्रण बना पाता है।
८–ज्ञान और चारित्र भिन्न-भिन्न नही है।
९–सात तत्वों का विचित्र रूप।
१०–अजीव तत्व जीव का रक्षक है।
११–प्रत्यक्ष ज्ञान और परोक्ष ज्ञान की परिभाषा।
१२–नयो का प्रयोग सम्यग्दृष्टि ही कर सकते है।

सं०	विषय	पृष्ठ

१३—द्रव्य दृष्टि और पर्याय दृष्टि की खिचड़ी। २५८

१४—द्रव्य पर्याय और गुण पर्याय की विशेषता, प्रदेश गुण द्रव्य पर्याय है! २५९

१५—ज्ञान अनेक रूप बन जाते हैं। अर्थात् ज्ञान चारित्र गुण रूप हो जाते हैं। २६०

१६—क्या गुण की अशुद्धता एक ही कोटी की होती है। २६१

१७—ज्ञान की पूर्ण अशुद्धता होती है। २६२

१८—कोई भी जीव का ज्ञान पूर्ण अशुद्ध नहीं होते हैं। २६३

१९—चारित्र का पूर्ण अशुद्ध भाव है विषय में फसना। २६३

२०—श्रद्धा का शुद्धाशुद्ध भाव की विचित्र परिभाषा। २६४

२१—वेदना का पूर्ण अशुद्ध भाव पूर्ण अशान्ति इच्छाओं में चलता रहना। २६५

२२—क्षायिक भाव में भी क्षणिक शुद्धता आती है। २६५

२३—औदयिकादि चार भाव की परिभाषा। २७३

२४—ज्ञान और शान्ति में तीन भाव होते हैं। औपशमिक नहीं २७४

२५—औदयिक आदि भाव अनादि सान्त की व्याख्या २७५

२६—औदयिकादि चार भाव उत्पन्न होते हैं पर्याय रूप हैं शक्ति और गुण रूप नहीं। २७६

२७—पारिणामिक भाव पर क्षायिकादि चार भाव नृत्य करते हैं। २७६

२८—पारिणामिक भाव में हानि वृद्धि नहीं होती? २७८

२९—कोई जीव ऐसा नहीं जिसमें ज्ञान पूर्ण रूप ढक गया हो २७९

३०—मिश्र भाव में केवल शुद्धता मानी जाती है या शुद्धाशुद्धता! २८०

३१—क्या परिणामिक भाव में से क्षायिक भाव व्यक्त होते हैं २८१

३२—अध्यात्म वाद में व्यवहार सर्वथा निषेध किये जाते हैं! २८४

श्रीमान पंडित हीरालाल जी जैन सिद्धान्त शास्त्री द्वारा लिखित जैन धर्मामृत में विशेष जानने योग्य बातें। देखिये पृष्ठ २८७ से ३०२ तक

नमः सिद्धेभ्यः

॥ श्री ॥

वाक्यजाल

मंगलाचरण

शिर नमी अपुनः जन्म के हेतु श्री महावीर को ।
त्यागी वाक्यजाल विटंबना साधो मोक्ष मार्ग को ॥

वर्तमान काल में केवली और श्रुत केवली का योग न रहा । केवल शरण है तो उनकी वाणी का ही शरण है । जिनेन्द्र वाणी किसको कहना यह समझना भी महान् कठिन है । भगवान जिनेन्द्र की वाणी २ प्रकार की निकली है ।

१. सत्य वचन रूप।

२. अनुभय वचन रूप।

सत्य वचन रूपः—

सत्य वचन उसे कहते हैं। जो द्रव्य का जो गुण पर्याय है वह गुण पर्याय उसी ही द्रव्य का कहना वह सत्य वचन है। अनुभयं वाणी—जीव द्रव्य अनादि काल से कर्म के वंधन मे है। कर्म के कारण से वह जीव नरक तिर्यंच मनुष्य और देव गति में जन्म लेते है। जीव को अनेक प्रकार का शरीर मिलता है। अनेक प्रकार की इन्द्रियां मिलती है। वह जीव को मनुष्य कहना तिर्यंच कहना एक इन्द्रायादि कहना वह अनुभय वाणी है। अनुभय वाणी का अर्थ सत्य भी नहीं और असत्य भी नही ऐसा अर्थ होता है किन्तु गलत अर्थ नही होता है। असत्य अर्थ नही होता है। जीव को मनुष्य कहना वह सत्य नही है क्योंकि वह ज्ञान स्वरूप आत्मा है। इससे वह सत्य नहीं है। और वर्तमान में वह जीव को मनुष्य की ही पर्याय मिली है इससे वह असत्य भी नहीं है। जीव को ज्ञान स्वरूपी आत्मा कहना वह निश्चय नयका कथन है। और जीव को मनुष्य तिर्यंचादि कहना वह व्यवहार नयका कथन है। व्यवहार अभूतार्थ असत्यार्थ है। इसी प्रकार व्यवहार

की अपेक्षा निश्चय भी अभूतार्थ असत्यार्थ है। ऐसा जानना चाहिये। एकान्त से कथन नहीं जानना चाहिये। व्यवहार अभूतार्थ ही है। ऐसा कहना ऐकान्त कथन ही है। जो जिनागम को मान्य नहीं है।

इसी अपेक्षा से कहा जाता है। कि जीव कथंचित चैतन्य प्राण से भी जिता है, और कथचित चार प्राण से भी जीता है। जो जीव ऐकान्त से चैतन्य प्राण से जीता है वह कहनार या माननार को जिनागम में मिथ्याद्रष्टि कहा जाता है। यही वात प्रवचन सार ग्रन्थ की गाथा १४८ तथा पचास्तिकाय ग्रंथ की गाथा ३० में भी कहा है।

जो चार प्राने जीवता पूर्वे जीता है जीवेगा।
वह जीव है और प्राण इन्द्रिय आयुबल उच्छ्वास है ॥

नौ तत्त्व जीव द्रव्य की ही पर्याय है, जिसमें जीव तत्त्व निश्चय नयका विषय है, और वाकी का तत्व व्यवहार नयका विषय है यह दोनों का यथार्थ ज्ञान करने से ही प्रमाण ज्ञान होता हैं, और प्रमाण ज्ञान का नाम ही सम्यक् ज्ञान है। केवल एक नय के ज्ञान से सम्यक् ज्ञान नहीं है। यदि निश्चय नय को सत्यार्थ और व्यव-हार नय को अभूतार्थ असत्यार्थ माना जाये तो संसार

मोक्ष रहता ही नही । वहाँ निश्चय नय त्रिकाल स्वभाव को लिया है और त्रिकाल स्वभाव में पर्याय गौण है और व्यवहार नय पर्याय दिखाता है जिसमे त्रिकाल स्वभाव गौण है, नही है ऐसा माना जावे तो एक न्त मिथ्यात्व का दोष लगता है । वही बात नियम सार ग्रन्थ की गाथा १९ में दिखाया है कि.—

द्रव्यार्थिक नय से आत्मा में केवल ज्ञान वीतरागता सम्यक् दर्शन आदि नही है किन्तु व्यवहार नय से आत्मा में केवल ज्ञान वीतरागता सम्यक् दर्शन मति श्रुतादि ज्ञान क्रोधादि भावों है । यह दोनो नयका ज्ञान करने से ही सम्यक् ज्ञान होता है । केवल एक नय को पकड़ने से, जानने से एकान्त मिथ्यात्व का दोष आ जाता है । इसलिए समयसार ग्रंथ की गाथा १३ में कहा है कि:—

भूतार्थ से जानेल जीव अजीव पुन्य और पाप को ।
आस्रव संवर निर्जरा बन्ध मोक्ष्य वे सम्यकत्व है ॥

केवल जीव तत्व का गाना गाने से सम्यकत्व नही हो सकता है किन्तु नौ तत्व को यथार्थ जानने से सम्यकत्व होता है ।

यह नौं तत्व में अनेक उपचार का कथन किया गया है किन्तु उपचार को उपचार जानना यथार्थ ज्ञान

है। उपचार को सत्यार्थ जानना मिथ्या ज्ञान है। नौ तत्व जीव द्रव्य की पर्याय है तब वहाँ सब जीवादि को यथार्थ पर्याय जानना चाहिये। पुद्गल द्रव्य की नहीं।

जीव तत्व---जीव द्रव्य का त्रिकाली स्वभाव भाव है उसे जीव तत्व कहा जाता है।

अजीव तत्व–

जीव द्रव्य की सयोंगी अवस्था अर्थात् जिस पुद्गल से साथ आत्मा वंधन में है वह पुद्गल द्रव्य का नाम अजीव तत्व है क्योंकि उनके साथ में जीव का जन्म मरण का देखना जानना आदि सम्वन्ध है। वह अजीव तत्व शरीर, इन्द्रियाँ, दण प्राण, कर्म, प्रदेश, प्रकृति स्थिति और अनुभाग वन्ध है, वर्ग वर्गणा स्पर्धक आदि अजीव तत्व है किन्तु पुद्गल द्रव्य, धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य और काल द्रव्य अजीव तत्व नहीं है॥ किन्तु वह अजीव द्रव्य है क्योंकि उसके साथ में आत्मा का कोई वन्ध वन्धन सम्वन्ध नहीं है कि वह जीव द्रव्य की अवस्था हो जावे।

आश्रव तत्वः–

जीव द्रव्य में योग नाम का गुण है वह गुण का कम्पन अवस्था का नाम आश्रव तत्व है और वह आश्रव

होने में निमित्त कारण शरीर वाणी और मन रूपी पुद्गल अजीव "तत्व है।" जब तक शरीर का संवन्ध है तव तक जीव आश्रव सहित है शरीर का अभाव होने से आश्रव रहित अर्थात् अयोगी हो जाता है।

पुन्य तत्व—

बुद्धि पूर्वक धर्मानुराग उसे पुन्य तत्व कहते है

पाप तत्व—

बुद्धि पूर्वक विषयानुराग उसे पाप तत्व कहते है

बन्ध तत्व—

जीव द्रव्य मे श्रद्धा चारित्र और क्रिया नाम का गुण है उसी की विभाविक अवस्था का नाम वन्ध तत्व है। श्रद्धा गुण का विभाविक अवस्था का नाम मिथ्यात्व है और मिथ्यात्व भाव होने मे निमित्त कारण दर्शन मोहिनीय कर्म अजीव तत्व है। चारित्र गुण की विभाविक अवस्था का नाम कषाय है जिसका निमित्त कारण चारित्र मोहनीय कर्म अजीव तत्व है। क्रिया गुण की विभाविक अवस्था का नाम क्षेत्र से क्षेत्रांतर होना है जिसको लेश्या भी कहते है उसका निमित्त कारण शरीरनामा नाम कर्म है जो अजीव तत्व है।

सँवर तत्व—

मिथ्यात्व भाव का छूट जाना अर्थात सम्ययक् दर्शन

होना वह प्रथम सँवर है। अनंतानुवन्धी कषाय का छूट जाना अर्थात स्वरूप की सन्मुख होना वह दूसरा सॅवर है। अप्रत्याख्यान कषाय का अभाव अर्थात एक देश चारित्र होना वह तीसरा सँवर है। प्रत्याख्यान कषाय का अभाव होना अर्थात सकल संयम होना वह चौथा सॅवर है। प्रमाद का अभाव होना अर्थात सज्वलन कषाय का मन्द उदय वह पाचवाँ संवर है। सज्वलन कषाय का अभाव अर्थात यथाख्यात चारित्र होना वीतराग भाव होना वह छट्ठा सँवर है, और क्रिया गुण की निषक्रिय अवस्था होना वह सातवां सँवर है तबही आस्रव भावका अभाव हो जाने से जीव अयोगी और अलेश्या और अनाहारक हो जाता है यह चौदवॉ गुण स्थान की प्रथम समय में हो जाता है । सँवर शुक्ष्म भाव है अर्थात समय समय पर होता है।

निर्जरा तत्व—

बुद्धि पूर्वक रागादिक अर्थात इच्छाओं का अनन्तानु वन्धी कषाय का सँवर हुआ वाद यम रुप छूट जाना वह निर्जरा तत्व है। प्रथम सँवर होता है, वाद में निर्जरा प्रारम्भ होत है किन्तु निर्जरा प्रथम पूर्ण हो जाती है वाद में कषाय का पूर्ण सॅवर होता है निर्जरा चारित्र गुण की अंश में शुद्ध पर्याय है!

निर्जरा तत्व स्थूल भाव से ही होता है। स्थूल भाव में उत्पाद व्यय ध्रौव्य का नियम नहीं है। स्थूल भाव बन्द भी हो जाते हैं जैसे अपर्याप्तावस्था, निन्द्रावस्था, विग्रह गति मूर्छितावस्था आदि।

मोक्ष तत्व —

जीव द्रव्य का सम्पूर्ण गुणों एवं जीव द्रव्य की शुद्धता हो जाना यह मोक्ष तत्व है। तब ही अजीव तत्व का अभाव हो जाता यह मोक्ष तत्व है। यहां तक अजीव तत्व कहा जाता है।

शंका —जीव तत्व क्या है ?

समाधान —यह जीव द्रव्य का अनादि अनन्त ध्रौव्य रूप स्वभाव भाव है। स्वभाव का कभी नाश नहीं होता। जिसके अनेक नाम हैं। जैसे—चैतन्य ज्ञान धन, ज्ञायक स्वभाव, परम ब्रह्म आदि, जो वचन से अगोचर है अर्थात आत्मा का अनन्त गुण अनन्तानन्त पर्याय का पुंज रूप अखण्ड वस्तु है उसे जीव तत्व कहते हैं। जिस जीव तत्व मे अजीव तत्व का अभाव है जिसमें आस्रव तत्व का अभाव है जिसमें पुन्य तत्व का अभाव है जिसमें पाप तत्व का अभाव है जिसमे संवर तत्व का अभाव है, जिसमें निर्जरा तत्व का अभाव है जिसमे बन्ध तत्व का अभाव है और

जिसमे मोक्ष तत्व का अभाव है ऐसा केवल ज्ञान का पूंज का नाम जीव तत्व है।

शंका:—ऐसा कहने से जीव तत्व समझ में नहीं आते कृपया दृष्टान्त देकर समझाइये ?

समाधान:—सोना का स्वभाव सौ टंच है। उसी प्रकार जीव द्रव्य का स्वभाव जीव तत्व है अब आप विचारिये क्या पीला है वह सौ टंच है ! क्या बजनदार है वह सौ टंच है ! क्या वाजुबन्द आदि आकार रहे वह सौ टच है ? नहीं ! तब बताइये कि सौ टंच क्या है ? तब आपको कहना होगा कि वह बचन से बौला नही जाता किन्तु उसी का ज्ञान किया जाता है ! उसी प्रकार जीव तत्व वचन से बोला नही जाता किन्तु उसका ज्ञान किया जाता है इसलिये जीव तत्व का ज्ञान व्यवहार से ही हो सकता है। यही बात समय सार ग्रन्थ मे गाथा—८ में कहा हैं कि

भाषा अनार्थ बिना न समझावी सकाय अनार्य को,
व्यवहार बिन परमार्थ का आदेश ऐसा अशक्य है !

शंका:—व्यवहार से कैसे ज्ञान कराया जाता है ?

समाधान—एक मनुष्य बेहोश पड़ा है ! तब पूंछा जावे कि यह जिन्दा है अथवा मरा हुआ ! तब आप उसका स्वसोस्वास चलने से यह कह सकते हो कि इसमें

चेतना है ! वह चेतना क्या है। आप बता सकते हो ? नही १---किन्तु चेतना आपके ज्ञान में आगयी है।

एक चीटी कुचल गयी है तब आपको पूछते है कि यह चीटा जिन्दा है या मर गयो है। तब वह चीटी में कुछ हलन चलन हो वैसे ही आप तुरन्त कहते हो कि वह जिन्दी है। अर्थात उसमें चैतन्य है ? वह चैतन्य क्या है। आप बता सकते हो ? नही किन्तु चैतन्य आप के ज्ञान में जरूर आ गया है। वही चैतन्य को हम जीव तत्व सौ टंच कहते है !

एक मनुष्य की नाड़ी बन्द हो गयो है तब आपको पूछते हैं कि क्या यह मनुष्य जिन्दा है या मर गया है ? तब उसको नाक से गर्म हवा निकलती है या उसका तलवा गरम है वह देख कर आप तुरन्त कहते हो कि उसमें अभा चेतना है। यह चेतना का ज्ञान किससे हुआ। तब कहना होगा कि गरमी से चीटो में हलन चलन किया है वैसे ही मनुष्य के स्वासोस्वास से वह सब व्यवहार है अर्थात वे पुद्गल कीं पर्याय है अर्थात अजीब तत्व की पर्याय से जीव तत्व का ज्ञान किया जाता हैं इसलिये व्यवहार निश्चय का प्रतिपादक है। व्यवहार बिना निश्चय का ज्ञान होना असम्भव है ! यह जीव तत्व को पहचानने में जीवों ने गलती की है। कोई जीव

हलन चलन किया है ! उसे जीव तत्व मानते हैं ! कोई स्वासोस्वास को जीव मानते हैं ! कोई दश प्राण को जोव तत्व मानते है ! काई क्रोधादि कषाय को जीव तत्व मानते हैं ! कोई मति श्रुत ज्ञान को जोव तत्व मानते ! कोई सम्यक दर्शन को जीव तत्व मानते है ! कोई वीतराग भाव को जीव तत्व मानते है ! कोई तप को जीव तत्व मानते हैं ! यही अनादि काल की भूल पड़ी है। यह कोई जीव तत्व नहीं है ! किन्तु अन्य तत्व है ! एक तत्व को दूसरा तत्व मानना यहो मिथ्यात्व है ! जीव तत्व केवल श्रद्धा का विषय है ! वचन से अगोचर है जो अभेद है गुण गुणी का जिसमें भेद नही है ! गुण पर्याय का जिसमें भेद नहीं हो वही जीव तत्व है ! वही श्रद्धा का विषय है। जिस श्रद्धा को सम्यक् दर्शन कहा जाता है ! श्रद्धा को अपेक्षा देखा जाय या बोला जाय तब सम्यक दर्शन जीव मे नही ! केवल ज्ञान जीव में नही है, वीतरागता सरागता जीव में नही है, कुछ जीव नहीं है, वह तो सौ टन्च रूप ज्ञान का पूंज है यह कहना भी व्यवहार है ! निश्चय नय में संसार में कुछ नहीं है ! यह निश्चय का गाना गाता रहे और पाप भाव छोड़ने का विचार भी नही है। उसे निश्चया मासी मिथ्या- दृष्टि कहा

जाता है। और जो जीव सोना शुद्ध करना चाहता है किन्तु सौ टन्च का ज्ञान नही वह सोना शुद्ध कभी भी नही कर सकता ! उसी प्रकार जिस जीव को अपने स्वभाव का ज्ञान नही है और व्रत शील संयम का पालन करते है ऐसे जीव कभी भी शुद्ध नही बन सकते। क्योकि उन्हे शुद्धता का ज्ञान भी नहीं है ! जिससे वह जीव केवल पुन्य भाव को शूद्धता मान लेते है। ऐसे जीवों को जिनागम में व्यवहाराभाषी मिथ्यादृष्टि कहा जाता है किन्तु जिसको सौ टन्च सोना और सोना के पर्याय गुण का ज्ञान है, वही चतुर वोला जाता है। उसी प्रकार जिसको अपना स्वभाव और पर्याय का ज्ञान है वही जीव सम्यक् ज्ञानी सम्यग्यष्टि कहा जाता है।

शंका—कारण परमात्मा और कार्य परमात्मा किसे कहते है।

समाधान—जो परिणमन करता है वह कारण है परिणति कार्य है ! जैसे ज्ञान गुण कारण है और मति, श्रुति, अवधि, मन: पर्यय और केवल ज्ञान उसका ही पर्याय है। अर्थात कार्य है ! ज्ञान को कारण परमात्मा कहा जाता है ! और मति श्रुति को कार्य परमात्मा कहा जाता है ! जैसे चारित्र गुण कारण परमात्मा है !

और सरागता, वीतरागता कार्य परमात्मा है ! जैसे रंग रूप, कारण परमात्मा है और हरा, पीला, काला, सफेद कार्य परमात्मा है। श्रद्धा गुण कारण परमात्मा है और सम्यक् दर्शन और मिथ्यादर्शन कार्य परमात्मा है, यह सब समझाने की रीति है किन्तु अज्ञानी केवल कारण परमात्मा का गाना गाते ही रहते है ! उसी प्रकार जो केवल त्रिकाली स्वभाव का गाना गाता है और विश्वासघात जैसे पाप करने से डरते ही नही केवल वाक्य जाल है। जीव विशेषकर वाक्य जाल में फंस जाते हैं।

सुख-दुख दोनों जीव की ही पर्याय है और उसका कारण केवल चारित्र नाम का गुण है ! और दुख में निमित कारण चारित्र मोहनीय कर्म है ! ऐसा न जान कर केवल पाँच इन्द्रिय के विषयों को सुख दुख मानते हैं वही मोही जीव अज्ञानी है ! इसलिए सुख और दुख का उपादान कारण स्वयं है ऐसा जब तब जीव ज्ञान न करे तहाँ तक वह अज्ञानी है। सुख में निमित्त रूप चारित्र मोहनीय कर्म का अभाव कारण है और दुख में निमित्त रूप चारित्र मोहनीय कर्म का सद्भाव कारण है। यह भी अबुद्धिपूर्वक राग में किन्तु बुद्धिपूर्वक राग में नही ! यदि बुद्धिपूर्वक राग में भी यदि मोहनीय-

कर्म को निमित्त माने तो वह अज्ञानी जीव है ! आत्मा को जो शक्ति मिली है उसी का दुरुपयोग स्वयं आत्मा करता है किन्तु कर्म कराता नहीं है । इसी अपेक्षा से समय सार ग्रन्थ में कहा है कि आत्मा के विकार में जो एकान्त से कर्म का ही निमित्त मानते हैं वह अज्ञानी है। कथचित्त कर्म निमित्त है कथंचित आत्मा स्वयं रागादि करता है ! अर्थात अबुद्धि पूर्वक राग कर्म करता है और बुद्धि पूर्वक राग आत्मा स्वयं करता है ! यही बात समयसार गाथा नं• २८३-२८४-२८५ में कहा है ।

एक इन्द्रिय से दो इन्द्रिय जीव में शक्ति विशेष मिलती है दो इन्द्रिय जीव से त्रि इन्द्रिय जीय में शक्ति विशेप मिलती है । त्रि इन्द्रिय जीव से चौ इन्द्रिय जीव में शक्ति विशेप मिलती है चौ इन्द्रिय से असंज्ञी जीव में शक्ति विशेप मिलती है । और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव से संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव में शक्ति विशेप मिलती है । यह शक्ति कर्म के अभाव में ही अधिक मिलती है ! वह शक्ति का सदुपयोग करना या दुरुपयोग करना वह आत्मा के अधीन है वही आत्मा का पुरुपार्थ है ! इस भाव का नाम उदीरणा भाव है जिससे कर्मकी अविपाक निर्जरा होती है !

साधारण हौन बुद्धि वालों को ऐसा भी उपदेश है कि रागादिक को दुःख रूप जानना सम्यकज्ञान है। रागादिभाव ही दुःख रूप है, ऐसी श्रद्धा का नाम सम्यक्दर्शन है और रागादिभाव का त्याग करना वही सम्यक् चारित्र है। इतना ज्ञान से भी जीव मोक्ष मार्ग के सन्मुख हो जाता है। सम्क्दर्शन की प्राप्ति भी कर सकता है और वीतराग भाव की भी प्राप्ति कर सर्वज्ञ बन जाता है। जैसे शिवभूति मुनिराज—

जीव का लक्षण चेतना एव उपयोग भी बताया है ! चेतना चारित्र गुण की अपेक्षा से बताई है ! वह चेतना तीन प्रकार की है—

१—कर्म चेतना। २—कर्म फल चेतना। ३—ज्ञान चेतना।

जितना आत्मा में विकल्प उठता है वह संसार का कारण कर्म चेतना व कर्म फल चेतना है और जितने विकल्प सम्क् प्रकार से छूटते हैं वह ज्ञान चेतना है ! करने का भाव जो होता है वह कर्म चेतना है वह दो प्रकार की है। १—पुन्य भाव रूप। २—पाप भाव रूप।

उनमें धर्मानुराग करने का भाव पुन्य भाव रूप कर्म चेतना है और विषयानुराग करने का भाव पाप

रूप कर्म चेतना है और जो भोगने का भाव होता है वह कर्म फल चेतना है जो केवल पाप रूप ही है ! न कर्म करने का भाव और न कर्म भोगने का भाव किन्तु लोक के पदार्थ का ज्ञाता दृष्टा रहे वही धर्म भाव है ! उसीका नाम ज्ञान चेतना है। जो जीव यह तीन चेतना को ज्ञान गुण को पर्याय मानते हैं उसीकी मान्यता गलत है। उसी प्रकार उपयोग भी दो ही प्रकार का है।

१—सविकल्पौपयोग । २—निर्विकल्पापयोग ३—शुद्धोपयोग । ४—अशुद्धोपयोग ।

सविकल्पोपयोगः—

ज्ञान गुण की पर्याय है जिसमें चार पराधीन पर्याय है। १—मति ज्ञान, २—श्रुत ज्ञान, ३—अवधि ज्ञान, ४—मनः पर्यय ज्ञान इसीको सुज्ञान भी कहते है। और तीन अज्ञान हैं। कुमति ज्ञान, २—कुश्रुत ज्ञान, ३—कुअवधि ज्ञान, इसीको कुज्ञान भी कहते है;और केवल ज्ञान निरपेक्ष ज्ञान है ! स्वाधीन ज्ञान है कर्म के अभाव से उत्पन्न होने से उसे ज्ञायिक ज्ञान भी कहते हैं।

निर्विकल्पोपयोगः —

दर्शन गुण की पर्याय है ! दर्शन गुण की तीन पर्याय पराधीन है। १—अचक्षु दर्शन, २—चक्षु दर्शन,

३—अवधि दर्शन, ग्रौर केवल दर्शन, निरपेक्ष पर्याय है। वह स्वाधीन दर्शन है वह कर्म के अभाव से प्रकट होते जिससे उसे क्षायिक दर्शन कहते है।

शुद्धोपयोग :—

चारित्र गुण का स्वभाव पर्याय है जिसको वीत-रागता निराकुलवस्था कहते हैं और कर्म के उपशम तथा क्षय से उतपन्न होती है। एक को उपशम भाव दूसरी को क्षायिक भाव कहते है।

अशुद्धोपयोग :—

पुन्य पाप भाव का नाम अशुद्धोपयोग है। यही संसार में जन्म मरण कराने वाले भाव है। पाप भाव से अशुभ गती तिर्यंच नरक में जन्म कराती है। और पुन्य भाव से शुभ गति मनुष्य देव में जन्म कराती है। यह दोंनो भाव छोड़ने लायक है कहा भी है कि :—

पुन्य पाप जग बीज हे यही ते संसार।
जन्म-मरण सुख-दुख लहें भैया सब संसार।।

इसी प्रकार अनेक अपेक्षा से जिनागम में कथन किया है यदि एक भी कथन यथार्थ ज्ञान में आ जावे तो जीव सम्यक् दर्शन को प्राप्ति कर सकता है।

श्रीमान् कानजी स्वामी की वाक्य जाल एवं सिद्धान्ति क कितनी भूल है वह थोड़ी सीं दिखाता हूँ।

१—यह तेरा व्रत नियम मे क्या पड़ा है ? जब तक भगवान आत्मा का त्रिकाल ज्ञायक स्वभाव का ज्ञान न हो, तब तक यह सब धूल है फोगट है। कैसा है भगवान आत्मा का स्वभाव अनादि अनन्त है। ज्ञान का पुंज रूप हैं। सुख की खान है। आनन्द का सागर हैं। परम सूख का दाता है। आदि अनेक विशेषण लगा देगें। भोले जीव की तो बात क्या इन्दौर के ब्रह्मचारी छोटेलाल जी ने यह सुनकर अपनी प्रतिमा छोडकर अशुद्ध खाना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु कोई पूछते नही है कि क्या त्रिकाल स्वभाव आनन्द का कन्द है ? सुख का सागर है ? तब यह वर्तमान में दुख कहाँ से आ रहा है ? क्या पाँच इन्द्रिय के विषयो मे से आता है ? शरीर में से आता है ? कहाँ से आता है कृपया समझा दे। परन्तु पूछे कौन ? त्रिकाल स्वभाव मे आनन्द नहीं है सूख नही है। सुख तो पर्याय है उसकी वात छोडिये किन्तु त्रिकाल स्वभाव मे दर्शन ज्ञान चारित्र नही है तब आपने यह वात कहाँ से निकाली ? यही तो वाक्य जाल है। श्री कान जी स्वामी मुख से नही बोल सकते है कि त्रिकाल स्वभाव क्या है। क्योकि वह तो अखण्ड अभेद वस्तु है। जो वचन से अगोचर है। केवल ज्ञान गम्य है। यही बात समय सार मे गाथा ६–७ में लिखी है कि

नहीं अप्रमत के प्रमत नही जो एक ज्ञायक भाव है ऐसा शुद्ध कहा जाता है तो भी ज्ञायक तो ज्ञायक है! चारित्र दर्शन ज्ञान भी व्यवहार कथने ज्ञानी को किन्तु चारित्र नहीं दर्शन नहीं, नहीं ज्ञान ज्ञायक शुद्ध है!

निश्चय नय अभेद को ही ग्रहण करता है। जितने भेद है और व्यवहार नय अभूतार्थ है असत्यार्थ हैं ऐसी नौबत बजाते है।

२—श्रीमान कान जी स्वामी अबुद्धि पूर्वक राग मानते ही नहीं है जो राग कर्म के उदय के अनुसार अर्थात चारित्त मोहनीय कर्म के उदय के अनुसार नैमितिक पर्याय आत्मा में होती है।

वह कहते है कि मै राग करु तो कर्म का उदय बोला जावे यदि मैं राग न करु तो कर्म की निर्जरा बोली जावे। जैसे एक मनुष्य ने मुझको गाली दी वह गाली सुनकर यदि मैं शान्ति रखूँ तो कर्म की निर्जरा बोली जावे और यदि गाली सुनकर क्रोधादि करु तो कर्म का उदय बोला जावे। गाली सुनना असाता कर्म का उदय है। किन्तु वह उदय राग कराता नहीं है। जिस उदय ने केवल गाली सुननाही इतना ही कर्म का फल है किन्तु उसी समय अबुद्धि पूर्वक आपको बन्ध

पड़ता है या नहीं ? यदि पड़ता है तो वह किसका फल है ? आपने बुद्धि पूर्वक शान्ति रक्खी या क्रोधादि किया वह कर्म का फल नहीं है वह तो आत्मा का पुरुषार्थ है, किन्तु उसी समय अबुद्धि पूर्वक जो रागादि भाव से बन्ध हो रहा है वही चरित्र मोहनीय कर्म का फल है उसको वह मानते ही नहीं है।

श्रीमान् कानजीस्वामी की तीसरी भूल यह है कि वह निमित्त को एकान्त से अकार्य कारी ही मानते है। श्रीमान् कान जी स्वामी ने अबद्ध नोकर्म को ही निमित्त माना है। जिससे वह कहते है कि निमित्त अकार्य कारी है। जैसे जिनेन्द्र भगवान की वाणी खिर रही हमने उस पर लक्ष नही दिया तो वाणी क्या कर सकती है ? इससे सिद्ध हुआ कि निमित्त अकार्य कारी है, किन्तु शास्त्र कारो ने जिनेन्द्र भगवान की वाणी को वाह्य निमित्त माना है, जिसके साथ में आत्मा का कोई सम्बन्ध नही है। परमार्थ से जिस पुदगल की साथ में आत्मा का बन्ध बन्धन समबन्ध है उसे ही अन्तरग निमित्त माना है वही निमित्त को साथ आत्मा का निमित्त नैमितिक सम्बन्ध है। वाह्य निमित्त के साथ निमित्त नैमितिक समबन्ध नही है ! श्री कानजी स्वामी अन्तरंग निमित्त कर्म और शरीर

के प्राण को निमित्त भी मानते नहीं हैं ! जितने अंश में ज्ञानावरण कर्म का अभाव होगा इतना ही ज्ञान का उघाड होगा ! यह श्री कान जी स्वामी मानने को तैयार नही है। चार प्राण को श्री कान जी स्वामी नहीं मानते ! फूला आँख में पड़ा है ज्ञान में नही पड़ा है ! अब मनुष्य क्यों नहीं देखते हैं ? क्या कारण है ? निमित्त का अभाव से नहीं देखना है या उपादान की शक्ति नही है जिससे नहीं देखता है ? उपादनकी शक्ति सैनी, पंचेन्द्रीय रूप उघाड की है वहाँ वह जीव चौ इन्द्रीय शक्ति रूप नहीं वन गया है। यह पराधीनता की अपेक्षा से ज्ञान दर्शन में दो दो भेद हैं। [१] लब्धि [२] उपयोग। लब्धि होना ज्ञानावरण दर्शनाचरण कर्म के क्षयोपशय के आधीन है ! और वह शक्ति जो मिली है उसका उपयोग होना इन्द्रिय के आधीन है ! वह प्रत्यक्ष अनुमान ज्ञान में आते हैं तब भी वह अपनी जिद्द छोड़ने को तैयार नहीं ! यही उनकी वाक्य जाल है।

श्रीमान कानजी स्वामी पुद्गल की प्रायोगिक शक्ति मानते ही नही है यह मानने से निमित्त सिद्ध हो जाता है। पुद्गल स्कन्ध की दो शक्ति है ! १—वैंसेसिक परिणमन, २—प्रायोगिक परिणमन। स्कन्ध में से

समय-समय में परमाणु निकलना और आना वह स्कन्ध को वैभेलिक परिणमन है। और यही परिणमन बिना स्कन्ध कभी रह नहीं सकता है। उनमें ही समयवर्ती, उत्पादव्यय ध्रौव्य सिद्ध होते हैं। दूसरी शक्ति प्रायोगिक शक्ति है यह शक्ति का प्रगट होना चेतन के ही आधीन है। यदि चेतन योग उपयोग का प्रयोग न करे तो प्रायोगिक परिणमन स्कन्ध में नहीं हो सकता है। जैसे वाणी शब्द का उपादान कारण पुद्गल स्कन्ध है तो भी चेतन योग उपयोग रूप निमित्त न बने तो स्कन्ध शब्द रूप परिणमन नही कर सकता है। वही शब्द का निमित्त कर्ता चेतन का उपयोग और योग है। जिससे उपदेश चेतन को दिया जाता है, सत्य महाव्रत का पालन करो, भाषा समिति धारण करना, गुप्ति का पालन करना। वही वाणीका उपादान पुद्गल स्कन्ध को उपदेश नही दिया जाता है? चेतन मौन रखे तो वाणी रूप शब्द नही निकल सकता है वही बात पचास्ति काव्य ग्रन्थ की गाथा ७६ में लिखा है :—

है शब्द स्कन्धोत्पन्न, स्कन्धो अणु समूह संघात है,
स्कन्धाभिघाते शब्द उपजे, नियम से उत्पादय है!

तोर्थङ्करां मुनि पर्याय में मौन रखते हैं ! क्या वह स्कन्ध अपनो उपादान शक्ति से शब्द रूप परिणमन कर जायेगा ? कभो नहीं ? यह प्रायोगिक क्रिया श्रीमान कानजीस्वामो मानने को तैयार नही । यही उनको वाक्य जाल है ! देखिये अध्यात्म सन्देश में पृष्ठ १७६ पर श्रीमान कानजी स्वामो क्या कहते है । "मोटर के परमाणु पैट्रोल बिना न चले एसा अनेक दृष्टान्तो निमित्ताधोन दृष्टि वाला कहते है । किन्तु हे भाई ? मोटर के परमाणु में गमन शक्ति है या नही ? क्या गमन शक्ति पैट्रोल के परमाणु देते है ? नही ? एक परमाणु लोक के अन्त के हिस्से से लेकर लोक के अग्र भाग तक एक समय में १४ रज्जु चला जाता है ! उसकी गति इतनी सीघ्र होतो है कि छदमस्त के कल्पना से बाहर है । तब क्या वह परमाणु को पैट्रोल चलाता है ? वहो परमाणु पैट्रोल बिना चलते हैं या नहीं ? यदि वे परमाणु चलते है तो मोटर के परमाणु पैट्रोल बिना अपनो शक्तिसे चलते है ! ऐसा समजना । देखिए परमाणु और स्कन्ध को समान मान लिया ! स्कन्ध में भी अनेक भेद हैं ! सूक्ष्म बादर स्कन्ध तो स्वयं चला जावेगा ! किन्तु बादर-बादर स्कन्ध कैसे चलाजएगा ! पुद्गल की पर्याय का भी ज्ञान नहीं है !

क्या मेरु पर्वत वहाँ से अपनी शक्ति से उठकर दूसरी जगह चला जावेगा ! यदि उनमे शक्ति है किन्तु वह शक्ति प्रायोगिक उसमे स्वयं नही होती है ! मेरु में से भी परमाणु निकलते है और नया आता है वह उसकी वैसेसिक शक्ति से आते जाते है ! किन्तु समूचा मेरु वहा से चला जाये वह बन सकता है ? उसी प्रकार मोटर मे से अनन्त परमाणु समय-समय में निकलते है, नया आते है, वह उसकी वैसेसिक शक्ति से आते जाते है ! किन्तु समूची मोटर स्कन्ध १४ रज्जु चला जावे ऐसा कभी हो सकता है ? मोटर स्कन्ध का चलना वह मोटर स्कन्ध की प्रायोगिक क्रिया वह चेतन या पैट्रोल बिना नही हो सकती ! चेतन प्रधान कारण है ! मोटर के पुर्जा और पैट्रोल गौण कारण है ! तो भी प्रधानता बदल सकती है !

एक स्क्रू गुम हो जावे तो पैट्रोल एवं ड्राइवर होते भी मोटर चल सकती नही वहा स्क्रू का प्रधान कारण है। ऐसा श्री कानजी स्वामी दोनों क्रिया को खिचडी बना देते है। वही उनकी वाक्य जाल है ! प्रायोगिक क्रिया समयवर्ती नही होती है।

श्रीमान कानजी स्वामी क्रम वद्ध ही पर्याय मानते है ! जिस काल मे जो पर्याय होने वाली है

वही होगी उसे क्रमवद्ध पर्याय कहते हैं। यह मान्यता से पुरुषार्थ का ही नाश हो जाता है। यह एकान्त मिथ्यात्व का कथन है ! जीव में तथा पुद्गल स्कंन्ध में दो प्रकार की पर्याय होती है। जीव में एक अबुद्धि-पूर्वक राग और दूसरी बुद्धि पूर्वक राग ! अबुद्धि पूर्वक राग समय समय में कर्म के उदय के अनुसार हो जाता है। जिसमें आत्मा का पुरुषार्थ अकार्य कारी है जिससे वह पर्याय क्रम वद्ध है। जिससे सविपाक कर्म की निर्जरा होती है ! दूसरी पर्याय बुद्धि पूर्वक होतो है ! जिसमें आत्मा का पुरुषार्थ कार्य करते है। वह पर्याय अक्रम है। जिससे कर्म की अविपाक निर्जरा होती है ! बुद्धि पूर्वक पर्याय में समयवर्ती उत्पाद व्यय ध्रोव्य सिद्ध नहीं होते है। वह पर्याय बिना आत्मा रह सकतो हैं। जिसमें समयवर्ती पर्याय नही होती वह ही अक्रम पर्याय है। जैसे—मैथुन संज्ञा अहार संज्ञा क्रम बद्ध है किन्तु स्त्री की साथ रमण करना या ब्रह्मचर्य का पालन करना वह अक्रम पर्याय है। जो पुरुषार्थके आधीन है। उसी प्रकार आहार लेना या उपवास करना वह अक्रम पर्याय है। जो आत्मा के पुरुषार्थ के आधीन है। शास्त्रीय भाषा में क्रम बद्ध पर्याय को औदयिक भाव कहते हैं और अक्रम पर्याय

को उदीरणा भाव कहते है। जीव में एक समय में चौदह रज्जु गमन करने की शक्ति है। किन्तु वह शक्ति का प्रयोग नही होता, किन्तु जो शक्ति मिली है, उसी का प्रयोग अर्थात भोग होता है। मनुष्य में एक घन्टा मे ३ मील चलने की शक्ति मिली है, वह शक्ति का प्रयोग जीव जब चाहे तब कर सकता है, ऐसे जीव को चौबोस घटे मे एक हजार मील जाने का राग हुवा है, जिससे वह दुखी है, वह अपनी लाचारी देख ट्रेन की सहायता लेत्ता है। वह ट्रेन में पांच सौ मुसाफिर बैठे है, सबका गमन ट्रेन के अनुसार हो रहा है। ट्रेन से कमती या बढ़ती गमन वह कर नही सकता है। उसमें उसी का पुरुषार्थ चल नही सकता है, वह प्रत्येक जीव की क्रम बद्ध पर्याय है। तो भी प्रत्येक जीव को जो गमन करने की शक्ति मिली है वह शक्ति का नाश नही हुवा है, वह शक्ति से प्रत्येक जीव अलग अलग क्रिया कर रहे है। कोई सोता है, कोई बैठे है, कोई खड़े है, कोई पैसेन्जर ट्रेन पूर्व की ओर जा रही है, तब पश्चिम में टट्टी घर में गमन कर रहा है। यह सब जीवों की अक्रम पर्याय है। वह प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसी को श्री कान जी स्वामी क्रम बद्ध ही पर्याय मानते हैं। वह उसी की काव्य

जाल है। उसी प्रकार पुद्गल स्कन्ध में दो पर्याय होते हैं। एक वैसेसिक क्रिया दूसरी प्रायोगिक क्रिया। जैसे मिट्टी रूप पुद्गल स्कन्ध में से समय समय में परमाणु निकलना नया आना वह पुद्गल की वैशेसिक क्रिया है वह क्रम बद्ध पर्याय है। वह पर्याय बिना पुद्गल स्कन्ध नहीं रहते हैं। वही पुद्गल स्कन्ध में से घट, तवा, गिलास लोटा आदि बनाना, वह प्रायोगिक क्रिया है, वह अक्रम पर्याय है, वह जीव प्रयोग करेगा तब ही बन सकती है, इसके बिना नहीं बन सकती है। यह बात प्रत्यक्ष प्रमाण है तो भी श्री कान जी स्वामी मानने को तैयार नही है वह उसका वाक्य जाल है।

६—श्री मान कान्य स्वामी अर्थात सौन्यगढ़ से जितने शास्त्र प्रकाशित होते है उनमें वह लिखते हैं है कि जैन शास्त्रों का अर्थ कैसे करना इस विषय में लिखते है कि निश्चयनयसे जो निरूपण क्रिया हो उसे सत्यार्थ भूतार्थ मानकर श्रद्धान करना और व्यवहार नय से जो निरूपण किया हो उमें असत्यार्थ अभूतार्थ मानकर उसे श्रद्धान नही करना। श्री नियमसार ग्रंथ मे लिखा है कि केवली परमात्मा निश्चय से अपने आत्मा को ही देखते है और व्यवहार से लोकालोक को देखते है। वहाँ निश्चयसे अपने गुण पर्यायिको तन्न

मय होकर अर्थात तादात्म सम्बन्ध से देखता है किन्तु व्यवहार से लोकालोक को तादात्म सम्बन्ध से अर्थात तन्नमय होकर नहीं देखता है ऐसा अर्थ करते है। प्रथम तो लोकालोक के साथ मे आत्मा का तादात्म सम्बन्ध नही है। दूसरी बात लोकालोक के साथ मे जीविका सयोग सम्बन्ध भी नहीं है तब वह तन्नमय होकर नही देखता है यह कहना या लिखना कितना गलत है। छद यम्त जीव भी जैसे रूपादि इन्द्रियों मे पदार्थ को स्पर्श कर जानता है अनुभव करता है उसी प्रकार चक्षु इन्द्रिय से पदार्थ को स्पर्श करके देखता नही है, किन्तु दूर से ही देखता है, यह प्रत्यक्ष प्रमाण है, तब व्यवहार से केवली भगवान तन्नमय होकर नही देखता यह कहना कहा तक सत्य है वह श्रोता स्वय विचार करे। छदमस्त जीवो का व्यवहार निश्चयसे देखना कैसे होता है यह निर्णय किया बाद केवली भगवान व्यवहार निश्चय से कैसे देखता है यह विचार करना। मै अमुक मनुष्य की तस्वीर खेंच रहा हूँ, मेरे सिर पर काला पर्दा है मै केमरा से देखता हूँ और मनुष्य को वचन से सकेत करता हूँ कि आप सिर ऊँचा कीजिए आप जरा इस ओर बैठिये आप गर्दन ऊँचा कीजिए आप सोचिए मै फोटो खीचाने वाले को देखता हूँ कि नहीं

तब आप कहेंगे बिना देखे संकेत कैसे करते आप अवश्य उसे देखते हो। यह आपका कहना व्यवहारनयका कथन है क्योकि मै फोटो खीचाने वाले मनुष्य को देखता ही नहीं किन्तु कैमरा के कांच में मनुष्य का जो प्रतिबिम्ब पड़ा है वही देखता हूँ मनुष्यों को नही, तो भी मनुष्य को देखता हूँ यही कहना व्यवहार है उपचार मात्र है। केमरा के कांच में जो प्रतिबिम्ब पड़ा है उसे देखता हूँ वह भी निश्चय नही है, वह भी व्यवहार है, केमरा के कांच में जो प्रतिबिम्ब पड़ा है वैसा ही प्रतिबिम्ब मेरी आंख की पुतली में पड़ा है वह पुतली को देखता हूँ वह निश्चय है और कांचके प्रतिबिम्ब को देखता हूँ व व्यवहार है, अर्थात उपचार है। यदि मेरी आंख में मोतिया विन्दु होते, फूला होते तो क्या आंख की पुतली में प्रतिबिम्ब पड़ते नहीं इससे सिद्ध हुआ कि आंख की पुतली को देखता हूँ वह निश्चय है और केमरा के कांच में जो प्रतिबिम्ब पड़ा है वह व्यवहार है। मेरी आंख की पुतली को देखता हूँ वह भी निश्चय नहीं है किन्तु व्यवहार है क्योंकि आंखको पुतलीमें प्रतिबिब पड़े है और वह शरीर में आत्मा न हो तो क्या वह आत्मा देखेते नही, यथार्थ में आंख की पुतली में जो प्रतिबिम्ब पड़ा है वही मेरी आत्मा में प्रतिबिब पड़ा है मेरी आत्मा के ज्ञानाकार

को ही देखा है वह निश्चय है और आंख को पुतली को देखा है वह व्यवहार है और ज्ञान को देखा है वह परमार्थ निश्चय है, उसी प्रकार केवली भगवान जिसको प्रत्यक्ष ज्ञान प्रकट हुआ है वह अपने ज्ञान को देखता है वह निश्चय है और अपने ही अन्य गुण को देखते है वह व्यवहार है किन्तु लोकालोक को देखते है वह उपचार मात्र है। दूसरी बात प्रतिविम्ब पुद्गल मे ही पडते है अरूपी पदार्थ मे प्रतिबिब पड़ता है यह कहना उपचार मात्र कथन है तो भी केकली भगवान लोकालोक को तन्नमय होकर नही देखता वह कहना केवल वाक्य जाल है।

७—श्रीमान् कान्य स्वामी का कहना है कि प्रथम निश्चय सम्यादर्शन होते है वाद में व्यवहार सम्यादर्शन होते है, वहभी उसीका कहना यर्थाथ नही है, वाक्यजाल है। निश्चय सम्यग्दर्शन आत्मा के कौन से गुणकी पर्याय है और व्यवहार सम्यग्दर्शन आत्मा के कौन से गुण की पर्याय है वह दीखाते भो नही है केवल व्यवहार और निश्वय सम्यग्दर्शन बोलते है वह भी वाक्य जाल है। मिथ्या दृष्टि का चारित्र गुण विकारी अर्थात अनन्तानुबन्धी कषाय रूप परिणमन करता है वह निश्चय का कारण कैसे बने ? निश्चय का कारण ही स्वभाव पर्याय

होनी चाहिए या विभाव पर्याय ? श्रद्धा गुण जो स्वयं मिथ्यात्व रूप परिणमन करते है वह सम्यग्दर्शन का कारण कैसे होवे ? यथार्थ में सम्यग्दर्शन का कारण ज्ञान गुण है क्योंकि जितने अंश में ज्ञान का उघाड है वह ज्ञान ही स्वभाव पर्याय है वही पर्याय को क्षयो-पशमभाव कहा जाता है । देव गुरु धर्म का ज्ञान या छह दृव्य, पंचास्तिकाय, सात तत्वों को ज्ञान करना वही ज्ञान को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते है और अत्मानुभूति या दर्शन मोहिनीय कर्म का क्षय-उपशम क्षयोपशम होना वह श्रद्धा गुण की शुद्ध पर्याय का नाम निश्चय सम्यग्दर्शन है । जिस जीव को सप्व तत्व का ज्ञान नहीं है, देव गुरू धर्म का ज्ञान नहीं है, वह जीव कभी भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कर नही सकता है । प्रथम देशना लब्धि होती है वह देशना लब्धि ज्ञान गुण की पर्याय का नाम है बाद में ही करण लब्धि होती है इससेसिद्ध हुवाकि प्रथम व्यवहार सम्यग्दर्शन ही होता है बाद में ही निश्चय सम्यग्दर्शन होता है । व्यवहार कारण है और निश्चय कार्य है । सामान्य ज्ञान कारण है और सम्यग्दर्शन कार्य है । और सम्यग्दर्शन कारण है और वही सामान्य ज्ञान को सम्यक् ज्ञान कहना कार्य है ।

८—श्रीमान कान जी स्वामी कहते है कि कर्म की साथ में आत्मा के अत्यन्त अभाव है जिससे कर्म आत्मा को कुछ नहीं करते ? यह कहना भी उसकी वाक्य जाल है। प्रथम अत्यन्तादिचार अभाव तादात्म सम्बन्ध मे ही होता है जब कर्म का आत्मा को साथ मे तादात्म सम्बन्ध नहीं है। तो भी अत्यन्ताभाव का का गाना गाना यह केवल वाक्य जाल है।—अत्यन्तादिचार अभाव मे भी श्री कान जी स्वामी भूल करते हैं। जैसे—

१—एक जीव मे दूसरे जीवका अत्यन्त अभाव है, उसी प्रकार एक पुद्गल परमाणुमें दूसरे पुद्गल परमाणु का अत्यन्त अभाव। क्योंकि जहां प्रदेश भेद है वहां ही अत्यन्त अभाव कहा जाता है।

२—एक पुद्गल स्कन्ध मे दूसरे पुद्गल स्कन्ध का अन्योन्याभाव है ऐसे श्रीमान कानजी स्वामी कहते है। वह भी उनकी गलत भाषा है क्योंकि एक पुद्गल परमाणु मे दूसरे पुद्गल परमाणु में तो अत्यन्त अभाव है तब उनमें अन्योन्य अभाव कैसे हो सकते है ? क्योंकि यह चार अभाव तादात्य सम्बन्ध मे होते है। एक पुद्गल परमाणु में दूसरे पुद्गल परमाणुका प्रदेश मे भेद है। यथार्थमें आत्माके एक गुण मे दूसरे गुणका अन्योन्य

अभाव है वहाँ आत्मा के गुण में प्रदेश भेद नही है। उसी प्रकार पुद्गल के एक गुण में दूसरे गुण का अन्योन्याभाव है, वहाँ पुद्गल परमाणु के गुण में प्रदेश भेद नही है।

३—जीव की वर्तमान पर्याय में एवं जीव के एक गुण की वर्तमान पर्याय में भूतकाल की पर्याय का प्रागभाव है। यहाँ भी प्रदेश भेद नहीं है। उसी प्रकार पुद्गल परमाणु की वर्तमान पर्याय में एवं पुद्गल परमाणु के एक गुण की वर्तमान पर्याय में भूतकाल की पर्याय का प्रागभाव है।

४—जीव की वर्तमान पर्याय में एवं जीव के गुण की वर्तमान पर्याय के भविष्य पर्याय का प्रध्वंसाभाव है! उसी प्रकार पुद्गल परमाणु की वर्तमान पर्याय में एवं पुद्गल परमाणु के गुण की वर्तमान पर्याय के भविष्य की पर्याय का प्रध्वंसभाव है वहां भी प्रदेश भेद नहीं हैं!

इस तादात्म अभाव से पुद्गल में स्कन्ध नहीं होना चाहिए किन्तु स्कन्ध-तादात्य सम्बन्ध से नहीं होता है कन्तु संयोग सम्बन्ध से होता है और स्कन्ध प्रत्यक्ष देखने में आते हैं। उसी प्रकार जीव के साथ कर्म का संयोग संवंध है। कर्म के कारण से जींव की अनेक अवस्था होती है यह प्रत्यक्ष देखने में आती है। तोभी कर्म

कुछ नहीं करते है । वह कानजी स्वामी का कहना केवल वाक्यजाल है ! कर्म के कारण से ही आत्मा में औद-यिक क्षयोपसम उपशम क्षयिक भाव होते हैं । पंचास्तिकाय ग्रन्थ की गाथा ५८ मे कहा है कि--

पुद्गक्ष करम विन जीव को उपशम उदय क्षांयिक और क्षयो पशमिक न होय इससे कर्म कृत यहो भाव हैं ।

६—श्रीमान कान जीं स्वामी "निर्गुणागुण': यह तत्वार्थ सूत्र को सूत्र मानते ही नहीं है । यदि मानते हैं तो कैसे कहते है कि अस्तित्व गुण के कारण ज्ञान गुण ठहरे है, अलघुगुण के कारण सब गुण छोटे वड़े नही होते है इत्यादि उसका कहना यथार्थ कथन नहीं है केवल वाक्य जाल है। प्रत्येक गुण अपनी अपनी शक्ति से ठहरे है अपनी अपनी शक्ति से द्रव्य से छोटे और वडे नही होते हैं । उसकी अपनी शक्ति से उत्पाद व्यय करते है वस्तुत्वादि गुण के कारण नही करते है । द्रव्य मे अनन्त गुण है तोभी एक गुण दूसरे गुण के आधीन नही है स्वतन्त्र हैं ।

१०—श्रीमान कानजी स्वामी निश्चय नय को हीं स्वीकार करते हैं या मानते है किन्तु व्यवहार नय को अमूतार्थ असत्यार्थ मानते है अर्थात स्वीकार करते ही नहीं हैं यह उसकी केवल वाक्य जाल है। प्रत्येक द्रव्य

में दो शक्तियाँ हैं। १—नित्य शक्ति जिसको गुण कहते है। २—अनित्य शक्ति जिसको पर्याय कहते है। नित्यशक्ति को निश्चयनय ग्रहण करती हैं अर्थात प्रतिपादन करती है और अनित्य शक्ति को व्यवहार नय ग्रहण करती है अर्थात प्रतिपादन करती हैं और दोनों शक्ति को ग्रहण करना यह प्रमाण ज्ञान है अर्थात सम्यक् ज्ञान है। श्रीमान कानजी स्वामी ने नित्यशक्ति को सत्यार्थ मानी और अनित्य शक्ति को असत्यार्थ मानी वही एकान्त मिथ्यात्व है। यह एकान्त मान्यता से द्रव्य का नाश हो जावे ? यथार्थ में द्रव्य का नाश नही होता किन्तु वह जीव का ज्ञान पर्याय का नाश होकर अज्ञान पर्याय रह जाती है। यही बात श्री पंचास्तिकाय ग्रन्थ की गाथा १२-१३ में कहा है कि—

पर्याय विरहितद्रव्य नहीं, नही द्रव्य हीन पर्याय है।
पर्याय और द्रव्य की, अनन्यता श्रमणो कहै ॥१२
नहीं द्रव्य गुण बिण होय गुणविन द्रव्य भी नहोय है।
इससे गुणों और द्रव्यतनी अभिन्नता निर्दिष्ट है ॥१३

११—श्रीमान कानजी स्वामी का ऐसा कहना है कि द्रव्य और गुण तो शुद्ध है मात्र पर्याय अशुद्ध है। यह भी उनकी वाक्य जाल है। क्या द्रव्य और पर्याय में प्रदेश भेद है ?

तब पर्याय किसके आश्रित रही ? जब पर्याय अशुद्ध है तब द्रव्य और गुण भी अशुद्ध है। जैसे सोना शुद्ध है और कड़ा अशुद्ध हो जावे कैसे बन सकते है। कड़ा अशुद्ध है तो सोना भी अशुद्ध है क्योकि दोनों में तादात्म सम्बन्ध है। कोई कहे हमको सोना नहीं चाहिए किन्तु सोने मे से पीला गुण दे दो ? क्या वह दे सकते है ? नही। कोई कहे हमको सोना नही चाहिए किन्तु केवल कड़ा देदो। क्या वह दे सकते है ? नही। कोई कहे हमको पीला और कड़ा नही चाहिए केवल सोना दे दीजिये। क्या वह दे सकते है ? कदापि नही। सब साथ में लेना ही होगा क्योंकि तीनों का तादात्म सम्बन्ध है। गुण अशुद्ध है तो पर्याय भी अशुद्ध है और पर्याय भी अशुद्ध तो गुण भी अशुद्ध है है और पर्याय अशुद्ध है तो द्रव्यभी अशुद्ध है। और द्रव्य शुद्ध है तो पर्याय भी शुद्ध है और पर्याय शुद्ध है तो उसका गुण द्रव्य भी शुद्ध है क्योंकि उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीन होकर शत् का परिणमन होता है !

१२—श्रीमान कानजी स्वामी श्रद्धा और ज्ञान की खिचड़ी बना देते हैं। उनका कहना है कि निमित्ताधीन दृष्टि है। दृष्टि आप किस गुण को पर्याय मानते हो ? दृष्टि ज्ञान गुण ही पर्याय है या

जाल है। अहिंसा पालन का, सत्य बोलने का, चोरी नही करने का, ब्रह्मचर्य पालन अर्थात ब्रह्मचर्य में दोष न लगे, ऐसी सावधानी रूप भाव अपरिग्रह रूपी प्रवृति मार्ग को आस्रव भाव कहा है। पचम गुण स्थान में जो संयमासंयम भाव था वहाँ जो असमय भाव था, उसे त्याग से तो छठा गुण स्थान होता है। वह त्याग रूप भाव अर्थात प्रत्याख्यान कषाय का त्याग वही तो व्रत है वह आस्रव कैसे हो सकते है। पंच-महाव्रत का पालन करने का भाव वह सज्वलन कषाय का कार्य है वह आस्रव रूप है! ऐसा नही समझाते और त्याग मार्ग को आस्रव कहना वह वाक्यजाल है। नियमसार ग्रन्थ में गाथा १२५ में वही त्याग भाव को परम सामायिक कही है--

सावद्य विरत त्रिगुप्ति और इन्द्रिय समूह निरोध है।
स्थायी सामयिक उनको कही है श्री केवली सासन मे।।

संयम को क्षयोपसम भाव कहा है। जितने अश में राग का अभाव है वह संवर भाव है और जितने अंश में राग है वह आस्रव भाव है।

१५--श्रीमान कानजी स्वामी बुद्धीपूर्वक जो पुन्य भाव होते है उससे धातिकर्म मे पाप का बन्ध

हस्तावलम्बन रूप नही मानते किन्तु वह पुण्य भाव को विष्टा कहते है यह केवल वाक्य जाल है। समयसार ग्रन्थ की गाथा १२ मे एव कलश ५ में पुण्यभाव को हस्तावलम्वन कहा है। जिस गुण स्थानमे जिस प्रकार के पुन्यभाव चाहिए वह पुण्यभाव नही होगा तो वह आत्मा नियम से यही गुण स्थान से गिर जायेगा। इसी अपेक्षा से यही पुण्यभाव उपादेय है इसोलिये यह हस्तावलम्बन रूप है और आगे बढ़नेके लिये वही पुण्य भाव हेय है अर्थात छोड़ने योग्य है। यदि वही पुण्य-भाव में खड़ा रहेगा तो आगल कैसे बढेगा ? जो पुण्य भाव अपने पद से गिरने नही देते ऐसे पुण्यभाव को विष्टा कहना कहाँ तक उचित है ? भाषा भी ऐसी होनी चाहिए कि परजीवो को दु खरूप न हो ऐसी भाषा को समीचीन भाषा कहा है। नियमसार ग्रन्थ की गाथा ६२ मे भी यही वात कही है कि——

निज स्तवन परनिंदा पिशुनता हास्य कर्कश वचन को।
त्यागी स्वपरहित जेवदे भाषा समिति उसको ॥

१४——श्रीमान कानजी स्वामी हिसा झूठ चोरी कुशील परिग्रह रूपी त्याग अर्थात निवृत मार्ग को आस्रव कह कर भोले जीव को भ्रम में डालते है यह भी वाक्य

तत्त्वार्थ सूत्र के छठे अध्याय में अन्य जीवों को ज्ञान करने में अन्तराय प्रदोष निह्नव आदि दोष लगाने से ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्म का बन्ध होत है। अन्य जीवों को दान देने से अनुकम्पादि करने से साता वेदनीय का बन्ध होता है। केवली, शास्त्र, मुनि, संघ, देव पर्याय इनका अवर्णवाद करने से दर्शन मोहनीय कर्म का बन्ध पड़ता है। क्रोधादि कषाय भाव से चारित्र मोहनीय कर्म का बन्ध पड़ता है। बहुत आरम्भ परिग्रह रखने के भाव से नरकायु का बन्ध होते है। माया करने से तिर्यंचायु के बन्ध पड़ते है आदि आठ कर्म का बन्ध का वर्णन करते है, वहां पूज्यपादादि आचार्य देवो ने शंका की है कि—

प्रश्न—प्रदोष निह्नवादिकों से ज्ञानावरण कर्मो का आस्रव होता है या सब कर्मो का ?

उत्तर—तत्प्रदोष निह्नवादिकों का ज्ञानावरण आदि कर्मो का नियत रूप से जुदा जुदा आस्रव कारण कहा गया है।

प्रश्न—यह नियम है कि आयु छोड़कर सात कर्मो के आस्रव समय समय पर होते हैं। फिर प्रदोष निह्नवादि से केवल ज्ञानावरण कर्मो का ही बन्ध होता है यह कथन विरोध को प्राप्त होता है।

पड़ता है ऐसा बता कर पुन्य भाव को सर्वथा हेय बताते है। जिस जीव में बुद्धिपूर्वक भाव होते ही नही ऐसे जीव को बन्ध कैसे पड़ता है ? बन्ध समय-समय में अबुद्धिपूर्वक भाव से ही पडते है। वहाँ पुन्य जैसा पाप भाव का प्रश्न ही नही है वहाँ जो अनुभाग होगा वैसा ही घाति अघाति का बन्ध हो जाते हैं। तीव्र अनुभाग और मन्द अनुभाग किसको कहना वह अपने ज्ञान की बाहर की बात है। वहाँ तो अनुभाग के अनुसार स्वयं सात आठ कर्मों में परिणमन हो जाते है। बुद्धि पूर्वक भाव से बन्ध पड़ते ही नही है। किन्तु जो बन्ध सत्ता में है वही कर्म में बुद्धिपूर्वक भाव से संक्रमण-अपकर्षण उत्कर्षण और अविपाक निर्जरा होती है। पुन्य भाव से सत्ता में रहा कर्म में स्थिति काण्डक एवं अनुभाग काण्डक होतो है किन्तु स्थिति बढ़ती नही है अनुभाग बढता नही। तब पुन्य भाव से घाति कर्म मे बन्ध होता है, यह कहना कहां तक सत्य है ? यह सब वाक्य जाल है। पुन्य भाव करते वक्त अबुद्धिपूर्वक भाव से घाति अघाति कर्मों का बन्ध चलु है उसी का ज्ञान कराने के लिए यह प्रश्न किया गया है कि पुन्य भाव से घाति कर्म का बन्ध पड़ते है। यथार्थ में बुद्धिपूर्वक भाव से बन्ध पड़ते ही नही हैं !

उत्कर्षण और अविपाक निर्जरा होती है। यही बात मोक्षमार्ग प्रकाशक में भी लिखी है कि—"जो परमाणु कर्म रूप परिणम्या है उनका जब तक उदय काल न आवे तब तक वह जीव क प्रदेशों से एकक्षेत्रावगाह रूप बन्धन रहे है। वहाँ जीव भ व का निमित्त से कोई प्रकृतियो की अवस्था का पलटना भी हो ज य है। कोई अन्य प्रकृतिओं का परमाणु थे वह संक्रमण रूप हो अन्य प्रकृति रूप हो जाते है। कोई प्रकृत्तियों कि स्थिति व अनुभाग बहुत था वह अपकर्षण होकर कम हो जाती है। कई प्रकृत्तिआं की स्थिति व अनुभाग कम था वह उत्कर्षण होकर बहुत हो जाती है। इसी प्रकार पूर्व बाधा कर्मो की अवस्था भी जीव का यह बुद्धि पूर्वक भाव से पलट जाते है यही भाव का निमित्त न मिले तो न पलटाई जसो की तैसी रहती है। इसी प्रकार-बुद्धि पूर्वक पुन्य भाव से सत्ता मे जो कर्म पडे है उसमें स्थिति कान्डक और अनुभाग कान्डक होते हैं किन्तु घाति वा अघाति कर्मो का बन्ध होते ही नही। जैसे एक मनुष्य शीखरजी यात्रा करने को गये है। रस्ते मे चलते चलते वह थक जाने से विश्रान्ति लेते है। पांच मिनिट विश्रान्ति लेने से उसमें और चलने की शक्ति आती है। आप विचारीये यह शक्ति कहां

उत्तर—यह शंका ठीक नही है कारण के जो प्रदोषादिकों को ज्ञानावरणादि भिन्न-भिन्न कर्मो के आस्रव का कारण कहा गया है वह अनुभाग विशेष की अपेक्षा से ही कहा गया है। यद्यपि प्रदोष निह्नवादि कारणो से ज्ञानावरणादि समस्त प्रकृतियों के प्रदेशादि बन्ध का कोई नियम नही है। तथापि अनुभाग विशेष के नियम के हेतु पने से प्रदोष निह्नवादिक जुदे जुदे कर्मो के आस्रव के लिये विभक्त किये गये है।

देखिये यहाँ केवल अनुभाग बन्ध का कारण बनाया है। जो जीव इस प्रकार का बुद्धिपूर्वक भाव करते नही ऐसे ऐकेन्द्रिय से असज्ञी पचेन्द्रिय जीव को भी समय समय मे चार प्रकार के बन्ध होने है। १—प्रदेश बन्ध २—प्रकृति बन्ध, ३—स्थिति बन्ध और ४—अनुभाग बन्ध। उसे यह अनुभाग कैसे पड़ते होगे ? यही विचार ने की वात है। मोहनीय कर्म मे जितनी फलदान देने की शक्ति है उसी प्रकार जीव मे अबुद्धिपूर्वक तीव्र मन्दता रूप भाव होते है और उसी अनुसार नवीन बन्ध मे स्थिति अनुभाग पडते है। इससे सिद्ध हुआ कि बुद्धि, पूर्वकराग से नवीन बन्ध पड़ते नहीं है किन्तु सत्ता मे जो कर्म है उसमे संक्रमण अपकर्षण

से निकलने में अनन्त काल लग जाते हैं। मिथ्या दृष्टि जीव यह पुन्य भाव से सत्तर कोडा कोडी बन्ध काट कर अन्तः कोडा कोडो मैं कर्मों की स्थिति लाते है। यही बात श्री प्रवचनसार ग्रन्थ के चारित्राधिकार की गाथा २०२ की टीका में भी लिखी है कि

"अहो ! काल, विनय, उपधान, बहुमान, अनिह्नव, अर्थ, व्यंजन और तदुभय सम्पन्न ज्ञानाचार ? शुद्ध आत्मा का तु नहीं है ऐसा मैं निश्चय से जानता हूँ तो भी तुम कु तब तक अंगीकार करता हूँ जब तक तेरे प्रसाद से शुद्धात्मा कु उपलब्ध करलु ! अहो ! निःशंकितत्व, निःकांक्षितत्व, निर्विचिकित्सत्व, निर्मूढ दृष्टित्व, उपब्रहण, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना स्वरूप दर्शनाचार ! शुद्ध आत्मा का तु नही है ऐसा मैं निश्चय से जानता हूँ तो भी तुमकु तब तक अंगीकार करता हूँ जब तक तेरे प्रसाद से शुद्धात्मा कु उपलब्ध करलु ! अहो ! मोक्ष मार्गमें प्रवृत्ती के कारण भूत पचमहाव्रत सहित काय, वचन मनगुप्ति और इर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेपण प्रतिष्टापन समिति स्वरूप चारित्राचार ? शुद्धात्माका तु नही है ऐसा मै निश्चय से जानता हूँ तो भी तुमकु तब तक अंगीकार करता हूँ जब तक तेरे प्रसाद से शुद्धात्मा कु

मे आयी ? क्या छाया मे से या वह भूमि में से आयी है या अपने हो आत्मा में से आयी है ? उसी प्रकार जिस जोव को वीतराग भाव मे पहुँचना है वह वहा पुचते थक जाने से पुन्य भाव मे अटक जाते है। वहा वही पुन्य भाव से जो सत्ता मे कर्म है उसकी स्थिति आर अनुभाग तोडते है, वह कुछ तुटने से नेवु डीग्री का अनुभाग हो गया वह उदय भी नेवुं का हो आया भाव भी नेवुडीग्री का हुआ और नूतन बन्ध भी नेवु-डोर्ग्री का हुवा। जितना अनुभाग टुट गय इतनी शक्ति उस जोव को मिलने से वही गुण स्थान छोड़ कर आगे जाते है। वहां भी वह उसी प्रकार सत्ता में जो कर्म पडे हैं उसे काटते काटते दशमें गुण स्थान में जाते है वहा शूक्ष्म लोभ राग भाव होते है किन्तु वहो रागसे मोहनीय कर्म का वन्ध नही होने से वही जीव वीतराग हो जाते है। उसी प्रकार पुन्य रूपी कुल्हाडा से वह सत्ता के कर्म काटते काटते आगे आगे जाते हैं। इससे पुन्य विष्टा है पुन्य से घाति कर्मो में बन्ध पड़ते है वह कहना केवल वाक्य जाल है।–अपर्याप्त अवस्था में, विग्र गति मे, निद्रावस्था मे, मूर्छितावस्था मे यह वुद्धि पूर्वक भाव होते ही नही है। निगोदिया जीवो में यह भाव होते हो नही है जिससे उस जीव को निगाद

करने पड़ते। कोई भी केवली को पास में असाता कर्म सत्ता में नहीं रहना चाहिए तो भी वह रहते है इससे सिद्ध होते है कि सत्ता में जो कर्म प्रधानपने मोहनोय है उसे पुन्य भाव काटते है ऐसा पुन्य भाव का तिरस्कार करना विष्टा रूप कहना केवल अविवेक है। पुन्य भाव रस्ता साफ करते है और आत्मा आगे आगे चलती है। यही बात प्रवचन सार के चारित्राधिकार की गाथा २४० की टीकामे लिखा है कि "जो पुरुप अनेकान्तकेतन आगम ज्ञान के बल से समस्त पदार्थों का ज्ञेया कारो साथ मिलने थता विशद एक ज्ञान जिसका आकार है ऐसा आत्मा को श्रद्धतो और अनुभव करतो, आत्मा में ही निरत्र निश्चय बृती को इच्छतो सयम के साधन रूप शरीर पात्र को पॉच समिति से अकुसित प्रवृति से प्रवर्तंतो क्रमशः पाँच इन्द्रियों के निश्चल निरोध द्वारा जिसने काय, वचन, मन के व्यापार विराम हुआ है ऐसा होते, चिद्‌वृति को परद्रव्य में भ्रमण का निमित्त जो कषाय समूह वह आत्मा की साथ में अन्योन्य मिलन से अत्यन्त एक रूप हो गये है तो भी स्वभाव भेद से उनको पद रूप निश्चित करके आत्मा से ही उनको कुशल मल्ल की तरह अत्यन्त मर्दन कर करके अक्रम से मार डालता है वह पुरुष निश्चय से

उपलब्ध करलु ! अहो ! अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरि सख्यान, रसपरित्याग, विविक्त शय्यासन कायक्लेश प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग स्वरूप तपाचार ! शुद्धात्माका तु नही है ऐसा मे निश्चय से जानता हूँ ता भी तव तक तुजको अंगो- कार करता हूँ जब तक तेरे प्रसाद से शुद्धात्मा कु उपलब्ध करलु ! अहो ! समस्त अन्य आचार मे प्रवर्तावनारो स्वशक्ति के अगोपन स्वरू। वीर्याचार ! शुद्धात्मा का तु नही है ऐसा मे निश्चय से जानता हूँ तो भी तुम कु तव तक अगाकार करता हूँ जब तक तेरे प्रसाद से शुद्धात्मा कु उपलब्ध करलु ? इस रीते ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, और वीर्याचार को अगीकार करता है ।

देखिये यह सब विकल्पात्मक मन्द कषाय रूप बुद्धि पूर्वक पुन्य भाव है। यही पुन्य भाव सत्ता मे पडा हुआ कर्मो को शक्तिहीन करता है। प्रधानतया मोहनीय कर्म की स्थिति कान्डक और अनुभाग कान्डक यही भाव से होते है। शुद्ध भाव से सत्ता में पड़ा हुआ कर्मो की स्थिति अनुभाग घात नही होती है यदि शुद्ध भाव से सत्ता में कर्मों का नाश होते तो सब केवली तुरत मोक्ष चले जाते, कोई केवली को समुद्द घात नही

उसी प्रकार आत्मा का ज्ञान मंद है वह अपने ज्ञान से ही देखते है किन्तु पाँच इन्द्रियाँ और मन की सहायता मे ही देखते है उनके बिना देख नही सकते। यहाँ निमित्त की ही मुख्यता है वह बात श्री कानजी स्वामी मानने को तैयार नही है। मोक्ष मार्ग प्रकाशक की बात माने ही नही केवल मोक्ष मार्ग प्रकाशक का नाम लेकर अपना गलत मत चलाना है वही वाक्य जाल है। उसी प्रकार सातवाँ अधिकार में सम्यक ज्ञान अयथार्त प्रबृति में अयथार्थपना दिखाते पंडितजी लिखते है कि—तत्व ज्ञान का कारण अध्यात्मरूप द्रव्यानुयोग के शास्त्र है। वहां कोई जीव वह शास्त्र का अभ्यास करते है किन्तु वहां जैसे लिखा है तैसा वह निर्णय कर आपको आप रूप परकोपर रूप आस्रवादिको आस्रवादि रूप श्रद्धान करते नही है। कदापि मुख से निरूपण यथावृत ऐसे करे जिसकी वाणी सुन कर और जीव सम्यग्दृष्टि हो जावे किन्तु आप सम्यग्दृष्टि न बने। "यहाँ पर पंडित जी खुद लिखते है कि व्यवहार सम्यग्दृष्टि के मुख से यथार्थ वाणी सुन कर अन्य जीव सम्यग्दृष्टि बन जाते है किन्तु श्री कानजी स्वामी यह बात मानने को तैयार नहीं है और अपना गाना गाते हैं कि निश्चय सम्यग्दृष्टि के

जिन सूत्र समकित हेतु छैं ने सूत्र ज्ञाता पुरुष जे।
ते जान अंतर्हेतु दृगमोह क्षयादि जेमने।

उसी एकार पंचास्तिकाय ग्रन्थ की गाथा १३२, १३४ और १३६ की टीका के अर्थ भी बदल दिये है। यह कार्य अनन्तानुबन्धी कषाय बिना कैसे हो सकते है? यह तीन गाथा में निमित्त का प्रधान पना है जो उनको इष्ट नहीं है जिससे निमित्त को उड़ा देने के लिये गलत अर्थ किया है। निमित्त में प्रथम अवस्था होती है एसा न अर्थ कर निमित्त पीछे पीछे चलते हैं ऐसा महा वीपरीत अर्थ किया है। यह भी उनकी वाक्य जाल है।—

१७ —श्रीमान कानजी स्वामी अध्यात्म सन्देश पृष्ठ १६६ पर लिखते है कि इतर निगोद का जीव निगोद से निकल मनुष्य होता है वह कोनसा परिणाम के बल से निकलते है वह दिखाकर परिणाम की स्वतंत्रता दिखाता है। निगोद जीव को ज्ञान का विशेष बल नहीं है वहाँ तत्त्व विचार भी नहीं है तों भी चारित्र परिणाम या विशुद्धता के बल से वह जीव उचा आता है। देखिये यह वाक्य जाल। निगोदका जीव का ज्ञान कभी उपयोग रूप होता ही नही है क्योंकि इन्द्रिया कीं रचना हुवे उस पहले उस जीव का मरण होता है।

मुख से ही वाणी सुनने से ही सम्यग्दृष्टि बन सकते हैं व्यवहार सम्यग्दृष्टि की वाणी कार्य नहीं करती है। यह भी वाक्य जाल है। प्रथम तो यह निश्चय सम्यग्दृष्टि है या नहीं यह निर्णय छद्मस्थ जीव कर ही नहीं सकते। जहां जो जीव अपना सूक्ष्म भाव को जान नही सकते वह जीव दूसरे जीव का सुक्ष्म भाव कैसे जान सकते है ? दूसरी वात अन्य जीव उनकी वाणी ही सुनते है उनके भाव जानते ही नही है। उनके सम्यग्दर्शन होने में उस जीव की वाणी वाह्य कारण पडती है या उस जीव का भाव वाह्य कारण पड़ते है ? यह विचारना चाहिये। वाणी को बाह्य निमित्त कारण कही है अन्तरंग कारण तो उन जीव का मिथ्यात्व नाम के कर्म का उपशय क्षयोपशम होना है। यही बात नियमसार ग्रन्थ की गाथा ५३ में भी कहा है कि

जिन सूत्र सूत्र ज्ञाता पुरुष बाह्य हेतु है समकित के
अन्तरंग हेतु जान दर्शन मोह क्षयादि होय ते ॥

दुःख की बात है कि यह गाथा का पद भी श्री कानजी स्वामी ने बदल दिया है। देखिये मूल गाथा से कितने कितने विपरीत अर्थ किये है !

लना से वहाँ जाना हुआ है अपना पुरुषार्थ से नहीं यही बात प्रवचनसार ग्रंथ में गाथा ११७ में लिखा है कि—

नामकर्म निज स्वभाव से जीव द्रव्य स्वभाव को अभिभूत कर तिर्यंच देव मनुष्य नरक करते हैं।

उसी प्रकार पंचास्तिकाय ग्रंथ की गाथा ५५ मे लिखा है कि।

तिर्यंच नारक देव मानव नाम की जो प्रकृति है वह व्यय करे सत् भावका उत्पाद असत् तना करें॥

तो भी श्री कानजी स्वामी पुरुषार्थ का ही गाना गा रहा है। यही वाक्य जाल साधारण जीवों को उन्मार्ग में ले जाते है। श्री मान पंडित टोडरमलजी मोक्ष मार्ग प्रकाशक में तीसरे अध्यायमें लिखते हैं कि—

निगोद के जीव को निगोद से निकालना जैसे भाडभूंजा चना भूंजता है उसमें कोई चना उछलकर निकल जाता है तैसे निगोद से निकलना होता है। एवं दूसरे अध्याय में लिखते है कि निगोद से निकलो अन्य पर्याय मिलना काकतालीय न्यायवत जानना। देखिये वहाँ पुरुषार्थ की स्वतंत्रता है ही नहीं तो भी श्री कानजी स्वामी स्वतंत्रता का ढढ़ोरा बजा रहा

वहाँ पुरुषार्थ है ही नहीं केवल कर्म जनित नैमित्तिक पर्याय हो रही है। नैमित्तिक पर्यायमें पुरुषार्थ कहना कहाँ तक उचित है यही विचारना चाहिये। चार ज्ञान के धारी गौतम गणधर को वेद की नैमित्तिक पर्याय हो रही है क्या वहां वह पुरुषार्थ कर सकता है? यदि कर सकता है तो वेद का बन्ध क्यों हो रहा है? वह लाचार है। समयवर्ती पर्याय छदमस्थ के ज्ञानगम्य नहीं है उसमें पुरुषार्थ क्या? यथार्थ में वहाँ कर्म की ही मुख्यता है। चारित्र मोहनीय कर्म का उदय समय समयमें समान नहीं आता है कभी मंद उदय कभी तीव्र उदय कभी तीव्र तर दिखर आता है जितना अनुभाग लेकर आता है उसके अनुकूल ही जीव की चारित्र गुण की परणति हो जाती है, कभी मंद उदय आया और उस समय यदि आयुका बन्द हो जावे तो वह मनुष्य पर्याय में आ सकता है और कोई सहारा वहाँ नहीं है वहाँ कर्म की मुख्यता है पुरुषार्थ की नहीं। यदि पुरुपार्थ से निकलते है तो श्रेणिक महाराजा का आत्मा का चारित्र गुण नरक मे ले जाने वाले परिणाम से रहित है क्षायिक सम्यग्दर्शन है तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध भी हुवा है तो भी उसको नरक में क्यों जाना पडा? तब वहाँ कहना होगा कि नाम कर्म की प्रब-

का कर्तव्य नही था ? किंतु खुद वही मार्ग अपनाते हैं तइ दूसरे को कैसे रोक सकते है ? यही विचारने की बात है।

१६—श्रीमान कानजी स्वामी अपने को अव्रती सम्यग्दृष्टि कहते हैं और यही पद में अपने को सद्‌गुरु मनाने को चाहते है वह मिथ्यात्वगर्भित राग है। अपने सब अनुयायी अर्थात सकल दिगम्बर मुमुक्ष मंडल श्री कानजी स्वामी को सदगुरु देव मानते हैं। शास्त्र मे भी सदगुरु देव प्रकाशित होते है। पद के अनुकूल भक्ति करना वह विनय तप है किन्तु पद से विपरीत भक्ति करना करवाना यह विनय मिथ्यात्व है। श्री मान कानजो स्वामी मुख से तो ऐसे भी कहते है कि मे सदगुरुदेव कहलाने को नही चाहता हूँ वह भी उनकी वाक्य जाल है। यदि नही चाहता हो तो निषेध क्यों नही करते है ? परन्तु करे कैसे वह खुद चाहते है यदि नही चाहते तो कागज पर अपना पेर केशर या कुमकुम से क्यों छाप देते है ? यह स्वयं छापते है या अपना शिष्य जबरजस्ति से छापते हैं ? श्री कानजी स्वामी स्वयं शास्त्र सभामें कहते है कि नाम की महिमा छोड़ दो नाम की तो राख (बानी) होगी ? चक्रवर्ती का भी नाम नहीं रहा तो क्या अपना नाम रह

है। क्या पराधीनता को पराधीनता नहीं कहने से स्वतंत्रता आजायेगी ?।

१८—श्रीमान कानजी स्वामी कहते है कि सरदार शहेर वाले श्रीमान दीपचन्दजी शेठीया को निश्चय सम्यग्दर्शन हो गया है, निश्चय सम्यग्दर्शन रूप आत्मा के भाव क्या छदमस्थ के ज्ञान मे आ सकता है ? यदि नही आ सकते हैं तब आपने कैसे कह दिया कि यह जीव को निश्चय सम्यग्दर्शन हो गया है ? क्या यह आपका कहना गलत नही है ? यह केवल वाक्य जाल है। यह बाक्य सूनकर राजकोट के दिगम्बर जैन सघ श्रीमान दीपचंदजी शेठीया के दर्शन करने को लिये सोनगढ़ गये। क्या सम्यग्दर्शन पूज्य हैं या चारित्र पूज्य है ? पुजा करना वह व्यवहार है और व्यवहार में चरनानुयोग का ही सम्यग्दर्शन लेना चाहिये या करणानुयोग का सम्यग्दर्शन लेना चाहिये। बंदन करने आने वाले जीव भी तो व्यवहार सम्यग्दृष्टि है। अपने पदधारी अव्रत सम्यग्दृष्टि को भक्ति करना वह विनयतप है या विनय मिथ्थात्व है ? क्या यह श्री कानजी स्वामी नहीं जानते है ? यदि जानते है तो कदाचित अपने भाई गलत मार्ग पर चलते हो तो उनको सुधारना या स्थितिकरण करना कानजी स्वामी

है। आप श्री बाबु भाई को मना लीखें कि हमारे नाम की जरूरत नही है आप अपना आग्रह छाड़ दिजिये जिससे समाज में एकता हो जावेगी। कन्तु दुख की बात है कि आपने बाबु भाई को लिखा नही एवं श्री हिमतनगरसमाज का विनती पत्र का उत्तर भी दिया नही यह क्या दिखाते है ? आप मान नही चाहते हो यह कहना कहाँ तक उचित है ? ज्ञानी आत्मा कषाय करे नही किन्तु कषाय होने का जहाँ कारण उपस्थित हो जावे उनसे दूर रहे, किन्तु हिमतनगर समाज में फूट पाडने में ही अव्यक्त रूप आपकी सहरा है यह कैसे न माना जावे ? यही सब सोनगढ का वाक्य जाल है विशेष कितनो वाक्य जाल दिखादु और तो छोटी वड़ी बहुत हैं।
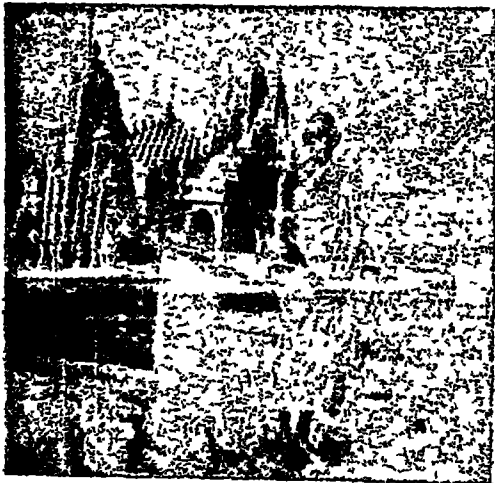
से विशेष लाभ होगा यही लक्ष्य से लिखी जाती है।

जैन तत्व मिमांसा में प्रधान दो विषय है। १– निमित्त अकार्यकारी है। २–क्रमबद्ध ही पर्याय होती है।–उस पर समीक्षा लिखी गये है।

निमित्त किसको कहना चाहिए और कौन सा निमित्त कार्य कारी है और कौनसा निमित्त अकार्य-कारी है वह जानना जरूरी है। निमित्त दो प्रकार के है। १—अन्तरंग निमित्त—प्रेरक निमित्त-बद्ध कर्म नोकर्म निमित्त यह एकार्थवाची है। २—बाह्य निमित्त उदासीन निमित्त अबद्ध नोकर्म निमित्त यह एकार्थ वाची है।

जो पुद्गल को साथ में आत्मा बंधन में है वही पुद्गल यथार्थ में निमित्त है वही कार्यकारी है उसे प्रेरक निमित्त अन्तरंग निमित्त कहते है वह द्रव्य कर्म और शरीर मात्र है इसको साथ में ही आत्मा का निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। यही निमित्त कार्यकारी है। निमित्त नमित्तिक में समान अवस्था ही होते है क्योंकि दोनों अरसपरस बन्धन में हैं। ज्ञानावरण कर्म के सद्भाव में केवल ज्ञान का अभाव ही है। ज्ञाना-वरण कर्म के जितने क्षयोपशम होगा इतना ही ज्ञान का उघाड होगा यहाँ ज्ञानावरण कर्म निमित्त है है।

नैमित्तिक है। द्रव्यमन बिगड जाने से आत्मा विचार नही कर सकती वह दशा में आत्मा पागल है।—– शरीर लकवागस्थ हो जाने से आत्मा अपना प्रदेश को हलन चलन नही कर सकते। शरीर निमित्त है और आत्मा के प्रदेश का हलन चलन नही होना नैमित्तिक है। स्वासोस्वास निमित्त है और जीवन धारण रहना नैमित्तिक है। स्वास रुक जाने से जीवन नही रह सकते। स्वासोस्वास निमित्त है और जीवन रहना नैमित्तिक है। निमित्त बिना आत्मा लुला, बहरो, अंधा पागलादि है।

देवगुरू शास्त्र एवं पांच इन्द्रियों के समस्त विषय धर्मास्तिकाय अधर्मास्ति काय आकाश और काल द्रव्य सब बाह्य निमित्त है। इसकी मुख्यता नही है। वहां उपादान की ही प्रधानता है। निमित्त गौण है। उपादान में जैसी अवस्था होती है वैसी अवस्था निमित्त में होती ही नहीं है क्योंकि उनके साथ आत्मा का बन्ध बन्धन सम्बन्ध नही है। श्री भगवती भैयादास एवं श्री बनारसीदास ने जो निमित्त का कथन किया है वह यह बाह्य निमित्त का ही कथन किया है किन्तु उसने द्रव्य कर्म एवं शरोर कर्म का कथन किया ही नही है। इसी कारण वहां उपादान की हो मुख्यता है।

धर्मास्तिगमन करे नही न करावती पर द्रव्य को।
जीव पुद्गलोके गति प्रसार उनका उदासीन हेतु है।
जिसमे गति होय है वही स्वयं स्थिर होते है।
वह सब निज परिणाम से करे गति स्थिति भाव को।

देखिये जब पुद्गल स्वयं गमन करते है। स्वय स्थिर होते है धर्मास्ति अधर्मास्ति गमन या स्थिर कराते नही क्योंकि वह केवल उदासीन है।

शका—सिद्ध परमात्मा अलोका काश में क्यों नही जाते हैं।

प्रतिशका—लोकाकाश किसे कहते है।

उत्तर—जितने आकाश के क्षेत्र में जीवादि पाँच द्रव्य रहते है इतना ही क्षेत्र का नाम लोकाकाश है।

देखिये आपके ही मुख से न्याय हुवा कि जितने आकाश के क्षेत्र में जीवादि पाँच द्रव्य रहते है इतना ही क्षेत्र का नाम लोक है तब लोकका द्रव्य अलोक में कैसे जा सकते है ? यह आपका प्रश्न ही यथार्थ नही है।

दूसरीं बात जीव पुदगल मेंक्रियावती नाम का गुण है। गुण परिणाम शील है। उनकी दो अवस्था होती है। १–कर्म जनित विभाविक, २–कर्म रहित स्वाभाविक। गमन करना और स्थिर रहना वह दो अवस्था होती

किन्तु भाई साहेब जरा शान्ति से विचार ना। मेरी बात आपको ठीक न जचे चिन्ता नहीं किन्तु आप उस पर विचार अवश्य करे। लोक के अग्रभाग में शुद्ध पारिणामिक भावसे स्वयं जींव स्थिर हो गया है। जीव का अर्थ क्रियावती गुण ेना जीव द्रव्य नहीं। वहाँ वह सादी अनन्त काल स्थिर रहेगा।

इससे सिद्ध हुवा कि उदासीन निमित्त में उपादान की ही प्रधानता है उदासीन निमित्त गौण है अर्थात उनकी मुख्यता नहीं जिस कारण वह अकार्यकारी है।

क्रमबद्धपर्याय--पर्यायक्रमबद्ध और अक्रम भी होती है। जो समय समय में अबुद्धि पूर्वक राग एवं क्रिया होती है वह क्रमबद्ध है। वह कर्म जनित पर्याय है और कर्म का उदय काल के आधीन है जिससे वह क्रम बद्ध है। जिससे सविपाक निर्जरा होती है। कर्म के अभाव से आत्मा को जो शक्ति मिलि है वह अक्रम पर्याय है अर्थात बुद्धि पूर्वक राग अक्रम है। वह राग करना कि नहीं करना वह आत्माधीन है जिससे अविपाक निर्जरा होती है। उसी प्रकार पुद्गल स्कन्ध में भी दो अवस्था होती हैं। एक वैसेसिक क्रिया (२) प्रायोगीक क्रिया। समय समय स्कन्ध में से परमाणुओं का निकलना और नया आना वह वैसेसिक

लम्बे धर्म ध्यान नही होता है निरालम्बन नही.।"

यथार्थ में जितने अंश में भाव संवर निर्जरा है यह निश्चय धर्मध्यान है और जितने अश मे धर्मानुराग है वह व्यवहार धर्मध्यान है। धर्मध्यान चारित्र गुण की पर्याय है। जितने अश में राग का अभाव है वह निश्चय धर्मध्यान है उसे ही ज्ञान चेतना कहते है और जीतने अंश में राग है उसे व्यवहार धर्मध्यान कहते है अर्थात वह कर्म चेतना है। ज्ञानी के दानों धारा साथ में ही चलती है जिसका दूसरा नाम क्षयोपशम भाव है।—

२—पृष्ट १६० पंक्ति ११ आचार्य यहाँ तक कहते है कि जो धर्मध्यान सावलम्वन है वह भी देश बृती श्रावकों के मुख्यता नहीं होता है वहाँ भाव संग्रह की साख दिया है। गाथा ३८३ का अर्थ—यह धर्मध्यान मुख्यपने देश विरत श्रावकों के क्यों नहीं होता है इसका कारण यह है कि ग्रहस्थों के सदाकाल बाह्य अभ्यन्तर परिग्रह परिमित रूप से रहते हैं। तथा आरम्भ भी अनेक प्रकार के बहुत से होते हैं इसलिए वह शुद्ध आत्मा के ध्यान कभी नही कर सकते।

शंका—ग्रहस्थों को धर्मध्यान नहीं होते हैं यह बात आगम को साख से पुस्ट करते है और यही ग्रन्थ

नोट–परमार्थ खलासा ऊपर कर दिया है यह धर्म ध्यान क्षयोपशय में ही होते है। अंश में शुद्धता अंश मे अशुद्धता। अशुद्धता का गाना गाते है तब वहाँ शुद्ध अंश भूल जाते है, यहाँ समझने में भूल रह जाती है।

४—पृष्ठ १६२ पक्ति १४ यह सब धर्म ध्यान व्यवहार स्वरूप है। परमार्थ स्वरूप नहीं है तो भी उनके आश्रय से आत्मस्वरूप की प्राप्ति अवश्य होती है।

नोंट–व्यवहार धर्म ध्यान कहना उसे आत्म स्वरूप की प्राप्ति भी करना यह समझने में भूल है। व्यवहार बन्ध रूप है और निश्चय सवर निर्जरा रूप है। क्षयोपशय भाव को समझने में ही महान भूल का ही यह कारण है है।

५—पृष्ठ १७० पंक्ति १४ "आचार्यों ने द्रव्य लिग को भाव लिग का कारण बताया है। द्रव्य लिग व्यवहार स्वरूप है उसके बिना भाव लिग होते ही नही हैं यह जैनागम का अटल सिद्धान्त है। इस विषय मे आगम की साख दी है। और आगे इससे प्रतिशक्ष में स्वयं साख देते हैं कि भाव पड़ुड़ा गाथा ७३

योग-का निरोध होने से चौदवे गुण स्थान में आत्मा जाना है यही क्रम है प्रथम आस्रव का निरोध नही होते हैं।

७—पृष्ठ १८१ पंक्ति १४ किन्तु इतनी बात जरूर है कि धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य का परिणमन अपने स्वभावमे होने पर भी क्रम नियती ही हो सो भा नियम नही है, क्योंकि उनमें भी गुण हानि वृद्धि रूप परिणमन हर समय में होता ही रहता है और वह सर्वथा क्रम बद्ध ही होता है ऐसा कहा नही जा सकता क्योंकि षटगुण हानी वृद्धी अक्रम भा हो जाती है।

नोट—जिस परिणमन में काल का मुख्यता है उसमें अक्रम कभी भी नही हो सकते है। स्वरूप परिणमन क्रम बद्ध ही होते है। तो भी अक्रम मानना यह यथार्थ ज्ञान नही है।

आपखुद पृष्ठ १६२ पंक्ति ४ पर स्वयं लिखते हैं कि "सिद्ध जीवों का परिणमन पर निरपेक्ष होने से कंथचित क्रमबद्ध भी होना है।

नोट—सिद्ध परमात्मा का परिणमन कंथचित अक्रम मानते है यह लेखक की विचित्रता है। अक्रम

विभाव रूप पर्याय है वह कर्म आधीन होने से क्रमबद्ध नही होती इसको क्रमबद्ध मानना ही अज्ञान है।

नोट—संसारी जीव की विभाव पर्याय दो प्रकार के है।

१—अबुद्धि पूर्वक २—बुद्धि पूर्वक। अबुद्धि पूर्वक राग कर्म जनित है वह राग का निमित कर्ता कर्म है और बुद्धिपूर्वक राग का कर्ता आत्मा है, स्वयं किया है। जैसे मैथुन संज्ञा कर्म जनित है। और स्त्री साथ रमण करना या ब्रह्मचर्य का पालन करना आत्म जनित है क्योंकि वह उदीरणाभाव है। उसी प्रकार आहार संज्ञा कर्म जनित औदयिक भाव है। और आहार लेना या उपवास करना आत्म जनित है वह उदीरणा भाव है। औदयिकभाव क्रमबद्ध है और उदीरणा भाव अक्रम है। ऐसा मानना यथार्थ है। वह अज्ञान नहीं है।

१०—पृष्ठ १८४ पंक्ति ३ "किन्तु संसारी जीवों की क्रमबद्ध पर्याय नहीं होती।

नोट—क्रमबद्ध और अक्रम पर्याय रागी जीवों में ही होती है। वीतरागी जीवों में क्रमबद्ध पर्याय ही होती है ऐसा करू या ऐसा न करू ऐसा राग ही नहीं है जिससे क्रमबद्ध पर्याय है।

रूप में न पढ़ने में ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशय नही मानते ?

नोट—पं० फूलचन्द्रजी साहेब का मानना यथार्थ है। पढ़ने में उपयोग लगाना या नही लगाना वह कर्म के आधीन नही है किन्तु छात्र के आधीन है, वहाँ छात्र की कसूर है कम का दोष नहीं है। लब्धि मिलना या न मिलना कर्म के आधीन है वह लब्धि मे से उपयोग करना कर्म के आधीन नहीं है छात्र के आधीन है।—

१४—पृष्ठ २०६ पंक्ति ५ "जैसे रोगी पुरुष रोग से दुखी हो रहा है तो उस रोगी को अन्तरंग उपदान कारण असाता बदेनीय कर्म का क्षयोपशम अनुकूल हो।

नोट—रोग होने में अन्तरंग कारण असाता कर्म का उदय; है किन्तु क्षयोपशम नहीं, क्योंकि, अघाति कर्मो में क्षयोपशम होते ही नहीं है। दुख का बदेन करना या नहीं करना आत्मा के पुरुषार्थ के आधीन है। गजकुमार मुनि को असाता का तीव्रतर उदय है और शान्त रह कर वीतराग भाव की प्राप्ति करली।

१५—पृष्ठ २२६ पंक्ति १५ "सम्यग्ज्ञान को प्राप्त करने वाले अन्तरंग कारण उनका ज्ञानावरणादि का

क्योंकि मति श्रुत ज्ञान क्षयोंपशम ही होते है।

१७–पृष्ठ २३४ पंक्ति ६। "भवितव्यता उपादान की योग्यता का दूसरा नाम है।

नोट–भवितव्यता कर्म का उदय अनुदय का नाम है उपादान की योग्यता का नाम नहीं है।

१८–पृष्ठ २३७ पंक्ति ६। वदेनोय कर्म के सद्-भाव में अव्याबाध सुख को प्राप्ति नहीं होतो है।

नोट–सुख को घात करने वाले घाति कर्म है अघाति कर्म नहीं है; तो भी परमार्थ से चारित्र मोह-नीय कर्म ही है। वदेनीय कर्म अघाति कर्म है वह सुख को नही घात करती है। वदेनीय कर्म के अभाव में अव्याबाध गुण प्रकट होते है सुख गुण नही। केवलो को अनन्त सुख हो गया है किन्तु अव्याबाध गुण विकारी है। अव्याबाध गुण किसे कहते है वह आप स्वयं जानते ही नही हैं।

१९–पृष्ठ २५३ पंक्ति १३ ध्यान रूपी निमित कारण जीव को मोक्ष में पहुचा देता है।

नोट–ध्यान निमित कारण नही है किन्तु वह उपादान है। ध्यान चारित्र गुण की पर्याय है। मोक्ष अथवा सिद्ध पर्याय गति नाम कर्म के अभाव में ही

आगम और युक्ति दोनों से वाधित हैं इस कारण अपरमार्थ भूत है !

नोट—क्रमबद्ध पर्याय होती है वह आगम मे एवं युक्ति से सिद्ध होती है किन्तु संसारी जीवों में और पुग्गल स्कन्ध में एकान्त से क्रमबद्ध नही है किन्तु अक्रम भी है यह परमार्थ है ।

२३—पृष्ट ३१५ पंक्ति १६ ग्यारे चक्रवती मोक्ष में गये एक नर्क गया ।

नोट—नौ चक्रवती मोक्ष गये है । १ स्वर्ग गये है । २ नरक गये है । ग्यारे मोक्ष नहीं गये है ।

२४—पृष्ठ ३१६ पंक्ति ११. ९९ वर्ष की आयु वाला ६६ वर्ष की आयु भोग चुका हो और परभव की आयु का बन्ध कर लिया है तो उसका अकाल मरण नही होगा ।

नोट—यह नियम नही है श्रेणीक महाराज कृष्ण नारायण का अकाल मरण हुवा है ऐसा आप मानते हो या नहीं । यदि मानते हो तो यह नियम नहीं रहा । यह उपचार का कथन है ।

२५—पृष्ठ ३८१ पंक्ति ४ दूरानदूर भव्य जीव को देशनादि का समागम हो नही मिलता जो आत्मा

उनको ऐसा निमित्त ही नही मिलता जा क्षेत्र
को छोड कर अन्य क्षेत्र में गमन करे।

नोट—वहाँ निमित्त का दोष नहीं है किन्तु उनके ऐसा भाव ही नहीं होते हैं। वहाँ उपादान की मुख्यता है। निमित्त की नही। अपने को देखने की शक्ति मिली है। विकार भाव से देखना या स्वभाव से देखना अपने आधीन है निमित्त के आधीन नही है।

२८—पृष्ठ ३३३ पक्ति ११। रागद्वेष, सुख दुख, आदि अवस्था पुद्गल कर्म के उदय का स्वाद है वह पुद्गल कर्म से अभिन्न है और आत्मा से भिन्न है।

नोट—रागद्वेष, सुख दुख, रूप अवस्था आत्मा की है इसो कारण वह अवस्था से आत्मा क्षणिक तन्मय है किन्तु पुद्गल कर्म के रागद्वेष सुख दुख होते ही नही जिससे वह अवस्था पुद्गल से भिन्न है। पुद्गल तो केवल निमित कारण है रागद्वेष सुख दुख का उपादान कारण आत्मा ही है।

२९—पृष्ठ ३४३ पंक्ति १ "किन्तु वास्तव में देखा जाय तो लाभ मिला है अपने अन्तराय कर्म के क्षयोंपशाम से और अपनी महेनत से।"

नोट—वाह्य सामग्री मिलना अन्तराय कर्म का कार्य नही है। अन्तराय कर्म घाती कर्म है और घाती कर्म

गुणविकारीं परिणमन करते हैं। किन्तु शुद्धोपयोग हो गये है।

३१—पृष्ठ ३५८ पंक्ति १। "जब निमित्तो के अनुसार पदार्थ का परिणमन होत है तब क्रमबद्ध पर्याय कैसे ?

नोट—निमित्त दो प्रकार के है। (१) बाह्य निमित्त (२) अन्तरंग निमित्त। बाह्य निमित्त के अनुसार जीव का परिणमन हुवे या न भी हुवे सिद्धांत नही है। वहाँ तो जीव की मुख्यता है जिससे जोव जो चाहे सो भाव कर सकते है जिससे वह पर्याय अक्रम है। किन्तु अन्तरग निमित्त कर्म का उदय है उसके अनुसार जीव को परिणमन करना ही पड़ते है जिससे कर्म का उदय आन काल के आधीन है जिससे वह क्रमबद्ध पर्याय है। यही वस्तु का स्वरूप है। सिद्धान्त से विरुद्ध कथन करना वही कथन वाक्य जाल है।

नोट–जीनागम में प्रथम तत्व ज्ञान करने का ही उपदेश है। तत्वज्ञान बिना परिग्रह का त्याग कार्यकारी नही।

२–"जो जीव अन्तरंग परिणामों से निर्मल है उनकी बाह्य क्रिया भी निर्मल होनी चाहिए यह सिद्धान्त है।

नोट–क्रिया अगल है और भाव अलग है। भाव शुभ है और क्रिया अशुभ है। अध्यापक छात्र को हाथ से मारते हैं वहाँ मारने की क्रिया अशुभ है तो भी अध्यापक का भाव छात्र सुधारने का है। एक मनुष्य के भाव खराब हैं और हाथ से हाथ जोड़ते है। वहाँ भाव खराब है और क्रिया शुभ है। कहावत है कि

मुख में राम बगल में छुरी, भगत भये नियत बुरीं।

भाव चरित्र गुण की पर्याय है और क्रिया क्रिया-गुण की पर्याय है। एक गुण में दूसरे गुण का अन्योन्य अभाव है।

३–अबुद्धि पूर्वक ग्रहण किये गये नोकर्म वर्गणा प्रत्ये निर्ममत्व होना चाहिय यह परमगुरु का उपदेश है।

नही है तो भी नोकर्म वर्गणाहार १३ वां गुणस्थान के अन्त तक है।

५–पृष्ठ २ पक्ति १७ "नियम कमती में कमती छह मास बहुत और अपनी शक्ति अनुसार प्रतिज्ञा लेनी चाहिये।

नोट–नियम में छह मास का नियम नहां है। अन्तमुहूर्त, मुहूर्त घडी दो घडी आदि का भी त्याग कर सकते है। इसका निषेध नहो है।

६–पृष्ठ ७ पंक्ति १५। "रात्रि भोजन में यद्यपि केवल अन्न लेने में आते है।

नोट–रात्रि भोजन मे केवल अन्न का तो त्याग अवश्य होना चाहिए। लेना चाहिए यह शब्द ठोक नही है। किन्तु त्याग करना चाहिये यह लिखना चाहिये।

७–पृष्ठ १० पंक्ति ६। "आहार एक आसन पर वैठ कर एक वखत लेना चाहिए उसे एकासन कहते है। एकासन में दतवन नही कर सकते है किन्तु भोजन वख्त मुख साफ कर सकते है और श्याम का एक वख्त प्रासुक जल ले सकते है।

नोट–एकासन में दूसरी दफे जल लेना नही चाहिये।

बात सुत्र पाहुड की गाथा १३ में भी लिखा है। उत्कृष्ट श्राविका मे अर्जिका का भी समावेश हो जाते है।–क्योकि अर्जिका समवसरण मे स्त्री का ही कोठे मे बेठती है।

११–पृष्ठ ५८ पंक्ति ६ मुनिराज के मूल गुणों में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावानुसार परिवर्तन हुवा है।

नोट–मुनिराज के मूल गुण में कभी भी परिवर्तन नही होते है। महाविदेह क्षेत्र में भी अठाइस मूलगुण होते है। उनमें परिवर्तन कहना और मानना अपनी अज्ञान की ही महिमा है।

१२–पृष्ठ ६० पंक्ति ४ प्रायश्चित किसे कहते है ? उत्तर–मन की मलिनता का नाश होना और पाप का नाश होना और आत्मा की शुद्धि होना उसे प्रायश्चित कहते हैं।

पुत्री, माता, बहन, चाँडालनी आदि के साथ (व्रतीश्रावक) मैथुन करे तब चार उपवास के प्रायश्चित्त से शुद्ध होते है। अहङ्कार पूर्वक मद्य, माँस मधु ओर अभक्ष पदार्थों का सेवन करने से दो उपवास प्रायश्चित से शुद्धि होती है।

नोट–प्रायश्चित अतिचार का होते है और व्रत में दोष लगे उसे कहते हैं, किन्तु यह अतिचार नहीं है,

है कि में सम. संमारभ, आरंभ रूप पाप में मन से, वचन से, काय से क्रोध, मान, माया, लोभ रूप कोई कार्य क्रिया कराया और अनुमादना कराई तो नही

नाट–श्रावक को नौ कोटो के त्याग होते ही नही है। वहां तो प्रधान एक देश त्याग है। नौ कोटी का त्याग तो सकल संयम में ही होते है। अपना किसा प्रकार के त्याग है वह यदि श्रावक को ज्ञान नही है तव वह श्रावक भी नही रह सकते।

१६–पृष्ठ ६३ पंक्ति २० सब यात्रा का पुन्न एक माता पिता की सेवा में आजाता है, माता पिता तीर्थ धाम है अथवा तीर्थाधिराज है।

नोट–माता पिता को सेवा धर्मानुराग में नहीं है वह अप्रसस्त राग है और तीर्थ यात्रा प्रसस्त राग है। माता पिता तीर्थाधिराज नहीं। लोक व्यवहार में माता पिता वंदन करने योग्य है परन्तु यदि पुत्रादि व्रती श्रावक या मुनिराज बन जावे तो वहां पुत्र माता पिता से वंदनीय वन जाते है। लोकिक और लोकोत्तर मार्ग अलग है।

१७–पृष्ठ १०२ पंक्ति ४ भुखा को अन्य, पीपासु को जल, गरीब की सेवा, रोगी को औषधी, अबला की

जानते हैं अर्थात वह पारिणामिक क्रिया का स्वामीत्व है ।

नोट—औदयिक भाव एक आँख की पलक में असंख्यात दफे हो जाते है जो छद्मस्थ के ज्ञान गम्य नही है जो ज्ञान गम्य नही इसका स्वामी तो मिथ्यादष्टि केसे बनेगा ? जो भाव और क्रिया ज्ञान गम्य होती है उसे उदीरणा शास्त्रीय भाषा में कहते हैं । यदि वह उनका स्वामी नही हो तो दुःखी क्यों होते हैं ? पांच प्रकार के पाप क्यों करते है ? क्या स्वामी नही मानने से उसी का वन्ध नही होगा ? यह सब वाक्य जाल है । मैथुन संज्ञा औदयिक भाव है किन्तु स्त्री साथमे रमण करना या ब्रह्मचर्य के पालन करना वह औदयिक भाव नही है उसे ही उदीरणा कही जाती है । यदि वह स्वामी नही है ता अपनी निंदा गर्हा आदि क्यो करते है ? यदि वह भाव का स्वामी नही है तो त्याग करने का भाव क्यो करते है । वुद्धिपूर्वक भाव का स्वामीपना छाट्ठा गुण स्थान तक होते हैं । यदि स्वामी नही होते तो प्रतिक्रमण प्रायश्चित क्यों करते है ? अबुद्धिपूर्वक भाव का वह स्वामी नही क्योंकि जो भाव अपने ज्ञान में न आये उसीका स्वामी कैसे बन सकते है ? इसीलिये कहा है कि वह भाव का वह साक्षात ज्ञाता है देखिये

भाव से परिणमन करते है तब वीर्यगुण क्षयोपशम भाव से परिणमन करते है। यह भेद नही जानने से वार्यगुण लीखते है या मानते है। यह उचित कथन नही है।

२१-पृष्ठ १३४ पक्ति २१। "अज्ञान की निवृती वह ज्ञान का कार्य नही है क्योंकि अज्ञान की निवृती रूप तो आप स्वय है।

नोट-आप स्वय अज्ञान रूप परिणमन करते है और कोई नही करते है ? वहीं अज्ञान परिणती का अभाव वही यथार्थ में ज्ञान का कार्य है इसमें शंका का स्थान नही है। गुण गुणा अभेद है। अज्ञान रूप कोई और आत्मा परिणमन करते है और ज्ञान रूप और आत्मा है ऐसा नही है। स्वयं है।

२२-पृष्ठ १३५ पंक्ति ३। "यदि तत्व ज्ञानी को ज्ञान मात्र से मोक्ष होते होय तो सम्यक् ज्ञान की पूर्णता तेरहवे गुणस्थान मे हो जाती हैं तो भी वहाँ मोक्ष हुवा नही इससे ज्ञानोपयोग रागादि की निवृती और वीतरागता की प्राप्ति के अर्थ है।

नोट-प्रथम वीतरागता होती है बाद मे ही केवल ज्ञान होते है। वीतरागता १२ वाँ गुणस्थान मे हो जाती है और केवल ज्ञान १३ वे गुणस्थान में होते

नोट–ऐसा वस्तु का रूप नही है। मिथ्यादृष्टि जीव भी हिंसादि पापका त्याग करते है। प्रमाद छट्ठे गुण स्थान मे है और वहाँ हिंसादि महा पाप नही है। प्रमाद का अभाव हो जाने पर भी संज्वलन क्रोधादि चारोही कषाय है। यही सब वाक्य जाल है। सबसे बड़ा पाप मिथ्यात्व है। तत्त्वार्थ श्रद्धान से ही मिथ्यात्व का अभाव होता है सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। अप्रत्याख्यान कषाय के अभाव से देश सयम होते है। प्रत्याख्यान कषायके अभावसे ही सकल संयम होते है। संज्वलन कषाय के तीव्र उदय से प्रमाद होते है तीव्र उदयके अभाव से प्रमाद का नाश हो जाता है, और संज्वलन कषाय के अभाव से वीतरगाता प्राप्त होती है यही क्रम परी पाटी है। समयसार गाथा २७३–

जिनवर कहेल व्रत समिति गुप्ति और तप शीलको अपनाये तो भी अभव्य जीव अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है।

२५–पृष्ठ १२६ पक्ति २ पूर्व कर्म का वन्ध उदय वह जीव का अज्ञान का निमित्त है और अज्ञान है वह कर्ता कर्म की प्रवृति का निमित है और कर्ता कर्म में ममकार और अहंकार रूप मिथ्यावासना है।

नोट–प्रथम वन्ध में अज्ञान निमित नही है किन्तु मिथ्यात्व, अव्रत भाव, कषाय और योग रूप आत्म

है तब ज्ञान से मोक्ष मानने में क्या बाधा आती है ? केवल वाक्य जाल है। बोलने की छटा है ?

२३—पृष्ठ १३५ पंक्ति २७। 'रागादि के विषय भूत पदार्थों को सम्यक् प्रकारे अत्यन्त भिन्न समझ कर बुद्धिपूर्वक अन्तरग से यथापदवी राग और राग के विषय भूत पदार्थों का त्याग कर हस्तावलम्बन रूप सराग चारित्र को ग्रहण करे तब ही राग को अपना स्वभाव से भिन्न अहितकारी समझा है ऐसा बोला जावे।

नोट—सराग चारित्र तो छट्ठा गुणस्थान में होते है उसे पहले यथा योग्य पदवीमे क्या अव्रत सम्यग्दृष्टि देश व्रती श्रावक राग को अहितकारी नही मानते है ? राग को अहितकारी माने बिना सम्यग्दर्शन कैसे हो सकते है ? सराग चारित्र धारण करे तब ही राग को अहित मानते है ऐसा नही है ? मानना श्रद्धा ज्ञान का विषय है और आचरण चारित्र का विषय है। माना बाद ही चारित्र आते है उनके पहले कभी भी नही आते है।

२४ पृष्ठ १३५ पंक्ति २१। "क्रोधादि कषाय प्रमादसे उत्पन्न होते है और हिंसादिक महापाप प्रमाद से उत्पन्न होते हैं और वही हिंसादि अव्रत रूप महा-पाप मिथ्यात्व से पुष्ट होते है।

नोट—सम्यक् महाव्रतादि वाह्य क्रिया नही है वह तो आत्म परिणाम है। सम्यक् महाव्रत अर्थात प्रत्याख्यान कषाय के अभाव रूप महाव्रत सवरभाव है उसे वाह्य क्रिया मानना मिथ्यात्व भाव है। यह सब वाक्य जाल है ऐसी जाल में भोले जीव फस जाते है।

२८—पृष्ठ १३६ पक्ति २२। "सम्यग्ज्ञान सहित महाव्रतादि तो चारित्र है तो भी व्रत तपादि शुभ भावों पराश्रित भावो होने से ज्ञानी उसे उपादेय मानते नही है।

नोट—महाव्रत को स्वयं चारित्र मानते है उनसे अगल कोई व्रत तो है ही नही। जीव को बचाने का भाव, सत्य बोलनेके भाव आदि प्रवृति वह तो संज्वलन कषायके कार्य है वह महाव्रत है ही नही उसे अवश्य वह हये रूप जानते है, किन्तु चारित्र को हेय कभी ज्ञानी जीव जानते ही नही। प्रवचसार ग्रन्थ की गाथा ७ में कहा भी है कि।

चारित्र है सो धर्म है धर्म है सो साम्य है।
वह साम्य जीव के मोह क्षोभ रहित निज परिणाम हैं।

इच्छा निरोध रूप तप वह तो उपादेय भाव है वही भाव भाव निर्जरा है। अनशनादि भाव हैं उसे बाह्य तप कहते है वह शुभोपयोग रूप भाव होने से

परिणाम निमित्त कारण है। कर्म के उदय होने में आत्म परिणाम कारण नही है। किन्तु काल द्रव्यकारण है। जिस जीव को मिथ्यात्व भाव नही उनको भी बन्ध पडते है वहां अज्ञान निमित्त नही है किन्तु अव्रतादि भाव है।

२६–पृष्ठ १३६ पंक्ति ११ आत्मज्ञानी जब तक स्वरूप स्थिरता नही कर सकते है तब तक हस्ताव-लम्बन रूप प्रसस्तराग रूप अरहन्तादि मे भक्ति, अनुराग, जीवो प्रत्ये अनुकम्पा रूप परिणाम चितकी प्रसन्नता रूप अथवा दयामयो धर्म के साधन रूप देहादि भावों मे (पुद्गल स्वभावी भावो मे) प्रवृत्ति करते हैं।

नोट–अरहन्तादि भक्ति, प्राणी प्रत्ये अनुकम्पा और चित्त की प्रसन्नता रूप शुभभाव देहाश्रित या पुद्गल स्वभावी भावो नही है वह तो आत्म आश्रित परिणाम है। आत्म आश्रित भावोको पुद्गल स्वभावी मानना मिथ्यात्व भाव है, वह जीव को भेद ज्ञान हुवा ही नही है।

२७–पृष्ठ १३६ पक्ति १८ निर्विकल्प की समाधि की प्राप्ति मे बाह्य क्रिया रूप सम्यक् महाव्रतादि साधन रूप है।

नोट—शुद्ध निश्चय नय से एक जगा पर कर्ता भोक्ता मानना नहीं और दूसरी जगा पर कर्ता भोक्ता मानना यही बताते है कि शुद्ध निश्चय नय का ज्ञान ही नहीं है। शुद्ध निश्चय नय केवल त्रिकाल स्वभाव, जो ध्रौव्य रूप है उसे ही स्वीकार करते हैं। शुद्ध निश्चय नय में संसार और मोक्ष है ही नही। संसार मोक्ष अशुद्ध निश्चय नय या व्यवहार नय में ही होते है। व्यवहार नय से आत्मा वीतराग भाव का कर्ता और भोक्ता है और व्यवहार नय से आत्मा शुभाशुभ भाव का कर्ता और भोक्ता है। यही बात समयासार ग्रन्थ के कर्ता कर्माधिकार में गाथा १०२ में भी कहा है कि—

जो भाव जीव करे शुभा शुभ तेहना कर्ता बने।
उनका बने वहीं कर्म आत्मा उनका वेदक बने॥

३१—पृष्ठ १४४ पंक्ति ७ उत्तर है प्राज: ? भाव कर्म दो प्रकार के हैं। १—संज्ञ २—असंज्ञ। चैतन्य का परिणाम को भाव कर्म कहते है और दूसरे पुद्गल कर्म पिन्डकी फलदान शक्ति को असज भाव कर्म कहते है।

नोट—भाव कर्म दो नहीं है। एक ही है। चैतन्य के परिणाम को भाव कर्म कहते है और पुद्गल कर्म के फल दान शक्ति को द्रव्य कर्म कहते है। यह दोनों में निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध समझने

हेय है। यह जिसको ज्ञान नही है वह जीव तत्व ज्ञानी भेद ज्ञानी नही है। इस प्रकार की वाक्य जाल भोले जीवो को अनन्त ससार के पात्र बना देते है। उसे हो सावधान रहना चाहिए।

२६–पृष्ठ १४० पक्ति ५ शुभ अशुभ दोनो पुद्गल स्वभावी बन्ध परिणाम होते भी अशुभ से बचने की (ज्ञानो) सर्व प्रकार की चेष्टा करते है।

नोट–जब शुभाशुभ भाव पुद्गल स्वभावी है उन में चैतन्य स्वभावी आत्मा कैसे चेष्टा करता हागा ? यही दानो भाव चैतन्य स्वभावी है चैतन्य के अस्तित्व मे ही होते है उसे पुद्गल स्वभावी मानना मिथ्यात्व है। कर्मो का बन्ध चैतन्य परिणाम से होते होगे या पुद्गल स्वभाव से होते होंगे ? निमित्त नैमितिक का भी ज्ञान नही है। बन्ध में निमित्त आत्म परिणाम है। ऐसी श्रद्धा रखना कार्यकारी है।

३०–पृष्ठ १३६ पक्ति १४ में लिखते हैं कि 'शुद्ध निश्चय नय से आत्मा में अन्य कोई प्रकार से कर्ता कर्म को सिद्धि है ही नही और पृष्ठ १४२-१४३ पंक्ति ५–११ मे लिखते है कि शुद्ध निश्चयनय शुद्ध स्वरूप को ही ग्रहण करते है इसी अपेक्षा से विचार करने से आत्मा केवल निज शुद्ध भावो का कर्ता भोगता है।

क्रिन्तु स्वाधीन बुद्धिपूर्वक भाव से वह कर्म की जो सत्ता है उसमें स्थिति और अनुभाग का घात करते हैं वह जंसे जैसे घात होते हैं ऐसे कर्म उदय में हीन हीन आते है, यही हीनता एक दफे कर्म बन्ध कराती नही जिससे आत्मा कर्मबन्धन से छुट जाती है। यही यथार्थ जवाब देना चाहिये थे किन्तु जाने विना जवाब देवे कैसे ? स्वयं प्रश्न उठाते है और स्वय उत्तर दे नहीं सकते है यही वाक्य जाल की महिमा है।

३३–पृष्ठ १४५ पंक्ति ७ "है भगवन्त ? जो जीव व्रत, तप, नियम, शीलरूप बाह्य तपचरण बिना जोव का मोक्ष हो जाते है तब संकल्प विकल्प सहित जो जीव है उसी का विषयों में व्यापार होते भी पाप नहीं लगना चाहिये ?

उत्तर–जो विकल्प रहित और मन वचन काय की गुप्ति सहित भेद विज्ञान के लक्षण पूर्वक परम समाधि में स्थित है उसी जीव का मोक्ष होते है।

नोट–देखिये वाक्य जाल ? प्रश्न क्या है और उत्तर क्या दिया है ? क्या विकल्प रहित व्रत तप बिना हुवा है ? और मन वचन काय की गुप्ति वह क्रिया की प्रबृति में होती है या निबृती में होती है। इससे अलग व्रत, तप, शील है क्या ? जैसे श्वेताम्बर

में ही अज्ञानी भूल कर जाते है । इसी को कारण कार्य भी करते है । इसी का यथार्थ ज्ञान मोक्ष मार्ग मे प्रयोजन भूत है।

३२–पृष्ठ १४३ पंक्ति २१ है भगवन्त ? द्रव्य कर्म के उदय से जीव मे मिथ्यात्वादि भाव कर्म होते है और वही भाव कर्म से नवीन द्रव्य कर्म का बन्ध होते है ऐसे परस्पर बन्ध पद्धति होने से जीव का मोक्ष कैसे हो सकते है ?

उत्तर–सम्यग्ज्ञानी निज आत्म तत्व की परम समाधि रूप निर्विकल्प समाधि मे लवलीन तल्लीन होते है उसे कर्म के उदय अपने स्वरूप से च्युत नहीं कर सकते है तब उदयगत कर्म निर्जरा को प्राप्त होने से नवीन कम का बन्ध होते नही ।

नोट–शिष्य का प्रश्न क्या है और उत्तर उनसे विपरीत दिया है । यही वाक्य जाल है । मोहनीय कर्म के उदय में आत्मा की च्युति नियम से होती है किन्तु शुक्ष्म लोभ के परिणाम से स्वजाति का अर्थात मोहनीय कर्म का बन्ध नहीं होते इसी कारण से आत्मा कर्मो से छुट जाते है । मोहनीय कर्म का जितना अनुभाग उदय में आते हैं इतना ही जीव का परिणाम होते हैं यह जीवका पराधीन अबुद्धिपूर्वक भाव है

है ग्रहण करने योग्य भी कहते और पवित्रता का कारण भी कहते है ? कितनी विचित्रता ? यही वाक्य जाल रूपी जहेर है। व्यवहार रत्नत्रय या व्यवहार मोक्षमार्ग सत्ता मे पड़ा हुवा कर्मो को तोड़ चकनाचूर कर देते है। यदि व्यवहार रत्नत्रय रूप आत्म परिणाम न बने तो सत्ता में जो कर्म पड़े है उसो का नाश हो ही नही सकते। यद्यपि यह पुन्य रूप विकल्प है किन्तु वह कुलहाड़ीं के कार्य करते है, जिस कारण उसे कथंचित उपादेय भी कहा है, किन्तु पाप रूप कहा ही नहीं है, और पाप भाव कोई अपेक्षा से उपादेय नही है। यही बात पंचास्तिकाय ग्रन्थ की गाथा १६० में भी कहा है कि—

धर्मादि की श्रद्धा सुदर्शन पूर्वांग बोध सु ज्ञान है।
तपमांही चेष्टाचरण यही व्यवहार मोक्ष मार्ग हैं॥

इसमें कहा भी पाप का नाम निशान है ? तो भी पाप मय कहना कितना अनुचित है यह पाठक स्वय विचार करे। इसी कारण ऐसे वाक्य को में वाक्य जाल कहता हूँ।

३५—पृष्ठ १५४ पंक्ति ५ स्वभाव च्युति कर्मोदय बिना कभो होती ही नही है तो भी कर्म का उदय केवल सर्वथा च्युति कराता नही है।

संप्रदाय में व्रत तप शील विना ही केवल ज्ञान हो जाते है ऐसा ही यह प्रश्न और उत्तर है। स्वरूप मे स्थिरता वही व्रत तप शील है उस जीव की बाह्य क्रिया भी स्वयं रुक जाती है।—पंचम काल में ऐसे वाक्य जाल में फंसाने वाले बहुत जीव है उसे खुब सावधान रहना। लड्डु खाते जाव और जडकी क्रिया दिखाते जाव यही वाक्य जाल है।

३४—पृष्ठ ४७ पंक्ति १९।

शंका व्यवहार रत्नत्रय को ससार के कारण रूप पाप मय आगम में कहा है ?

उत्तर—निश्चय रत्नत्रय जो उपादेय है उसी का व्यवहार रत्नत्रय कारण होने से उपादेय है अर्थात ग्रहण करने योग्य है। एवं परंपरा से जोव की पवित्रता का कारण होने से पवित्र है, तो भी वाह्य द्रव्य के अवलम्बन में लेने के कारण वह पराधीन है और जब तक व्यवहार मोक्ष मार्ग रूप रत्नत्रय का जीव को अवलम्बन हो तब तक निर्विकल्प समाधि रूप स्वरूप की प्राप्ति होती नही है इसी कारण व्यवहार मोक्ष मार्ग (रत्नत्रय) पाप मय है इसलिये निश्चय नय की अपेक्षा से व्यवहार मोक्ष मार्ग पाप मय है ऐसा कहा है।

नोट—देखिये व्यवहार मोक्ष मार्ग को पापमय कहते है और उसी व्यवहार मोक्ष मार्ग को उपादय भी कहते

पृष्ट १६३ पक्ति १३ भाव लेश्या का स्वरूप— कृष्ण लेश्या वाला जीव नरक गति का ही बन्ध करते है।

नोट—यह केवल वाक्य जाल है। पीत लेश्या वाले देव मर कर एकन्द्रिय पर्याय मे चले जाते है और परम कृष्ण लेश्या वाले सातवी नरक का जीव नियम से संज्ञी पचेन्द्रिय बन जाते है। कृष्ण लेश्या वाले नरक मे जाते है ऐसी बात कहां रही ? शान्ति से विचार कर अपना निर्णय कर लेना। उपचार कथन को सत्य कभो भी नही मानना यही सम्यक् ज्ञान है।

जिनागम मे लेश्या का कथन के विषय में वहुत ही उपचार है। लेश्या छह प्रकार की वताई है वह उपचार है। लेश्या मे कषाय का आरोप कर कथन किया है। कषाय छह प्रकार की हो जाती है जिससे लेश्या छह प्रकार की मानी है। १—तीव्र कषाय, २—तव्रतर कषाय, ३—तीव्रतम कषाय, ४—मद कषाय, ५—मन्दतर कषाय, ६—मन्दतम कषाय। लेश्या छह प्रकार की नही है। प्रवृतो अर्थात क्रिया का नामलेश्या है। लेश्या में अंशिक शुद्धता आती हो नही है जिससे लेश्या औदयिक भाव में ही मानी है। यदि अंशिक शुद्धता आती तो लेश्या क्षयोपशम भाव में मानते किन्तु माना नही है। यदि तोव्रतम कषाय का नाम कृष्ण लेश्या मानी जावे तो

नोट—कर्म का उदय स्वभाव च्युति कराते हैं और कर्म का उदय स्वभाव च्युति कराते भी नही है यह परस्पर विरोध कथन है। चारित्र माहनीय का उदय नियम से आत्मा को च्युति करता है वह कर्म के उदय मे आत्मा राग रूप परिणमन न करे ऐसा बन नही सकते है। ज्ञानावरण कर्म के उदय मे नियम से आत्मा केवल ज्ञान कर नही सकते है तो भी कर्म का उदय च्युति कराते नही है वह लीखना केवल वाक्य जाल है— ऐसे विप मिश्रित कथन से सावधान रहना चाहिये।—

३५—पृष्ठ १६३ पक्ति २ आत्मा के वीनराग भाव का जो घात करे उसे कषाय कहते है और आत्मा को मलीनता का जो लेप करे उसे लेश्या कहते है।

नोट—कषाय भाव कहो और मलीनता कहो दोनों एक ही अर्थ वाचक है यहा वाक्य जाल है। हिंसा मे प्रमाद मूल है। अभिलाषा मे कषाय मूल है और प्रवृती अर्थात क्रिया मे लेश्या मूल है। केवला परमात्मा मे प्रमाद नही है अभिलाषा नही है किन्तु प्रवृती अथवा क्रिया है जिससे वहाँ लेश्या है। लेश्या म अ श मे शुद्धता आना ही नही है। लेश्या ओदयिक भाव से ही हाता है लेश्या मे क्षयोपशम भाव होते ही नही है।

मे लेश्या नहीं रहती। गतिजाति नान कर्म के उदय मे लेश्या नही रहती। जिससे सिद्ध हुवा कि लेश्या का कारण शरीरनामा नाम कर्म एव विहायो गति नाम कर्म का उदय ही है।

छट्ठी सातवी नारक मे तीव्रतर कृष्ण लेश्या मानी है तब वहाँ जीव मर कर निगोद मे ही जाना चाहिये किन्तु जाते नही परन्तु नियम से सज्ञा पचेन्द्रिय ही बनते है। देव मे पीत लेश्या मानी हैं यदि पीत लेश्या का नाम मन्द कषाय माना जावे तो देव का जन्म देव मे ही होना चाहिये किन्तु ऐसा होता नही। देव मरकर एकेन्द्रिय मे (वनस्पति काय मे) जा सकते है जिससे सिद्ध होते है कि तीव्र मन्द कषाय के नाम लेश्या नही है। मिथ्यादृष्टि जीव की परम शुक्ल लेश्या होती है और केवल ज्ञानी वीतराग को भी परम शुल्क लेश्या मानी है। यह यदि कषाय के भेद होते तो वीतरागी मे तो कषाय का अभाव है और मिथ्यादृष्टि मे अनन्तानुबन्धी कषाय है। जिससे सिद्ध हुवा की लेश्या कषाय के नाम नही है। तब सोचना होगा को कौनसा कर्म के उदय के अभाव मे अलेश्या भाव होते हैं। मिथ्यात्व के अभाव में लेश्या रहती है। अव्रत भाव के अभाव मे लेश्या रहती है। कषाय के अभाव में लेश्या रहती है। चार धाति कर्म के अभाव मे लेश्या रहती हैं। विहायागति नाम कर्म के उदय मे लेश्या रहती है। अर्थात शरीरनामा नाम कर्म के उदय मे लेश्या रहती है और शरीरनामा नाम कर्म के उदय के अभाव

की प्राप्ति कर सकते हैं और एकावतारी लौकान्तिक देव भी बन सकते है। पंचम काल में भी मोक्ष मार्ग की शरूआत हो सकती है। मेरा नम्र निवेदन पाठक गण को है कि वह वह परीक्षा प्रधानी बने अन्यथा अवश्य वाक्य जाल में मकडी की तरह फस जायेगे।

यह ग्रन्थ गुजराती भाशा में लीखा है जिसका हिन्दी में अनुवाद कर प्रकासित कराया जाता है।

१–समर्पण–(श्री गुरुदेव ने) अध्यात्मतत्व विज्ञानी प्रातः स्मरणीय पुज्यपाद निःस्पृह निष्काम निर्लिप्त संवेग पाक्षिक विश्वकी अनुपम विभूति आदर्श महापुरुष सिद्धान्त न्यायाचार शास्त्र पारांगत चारित्रमूर्ति आर्ष मार्गोपदेष्टा ज्ञान निधि न्यायाचार्य परम पूज्य गुरुवर्य श्री १०५ क्षुलक गणेश प्रसाद जी वर्णी महाराज"

नोट–श्रीमान गणेश प्रसाद जी वर्णी क्षुलक पद में अर्थात श्रावक लिग में है उनको गुरुदेव चारित्र मूर्ति आदि विशेषण लगाना उसे विनय मिथ्यात्व कहते है। वह खुद यह ग्रन्थ के पन्ने ५१८ में लिखते है कि चारित्र के धारक निग्रन्थ गुरु छोड अन्य कोई जीव गुरु संज्ञा को प्राप्त नहीं हो सकते है। जिसमें चारित्र रुपी धर्म अपेक्षा से महतता होय वही यथार्थ

श्रीमान माननीय प्रवरवक्ता ब्रह्मचारीजी महाराज श्री चुन्नीलाल जी देसाई ने अनेक शास्त्र की रचना की है, इसी मे से यह प्रधान ग्रन्थ के जिसका नाम श्री सम्यक्त्व सुधा है। यह ग्रन्थ इकतीसा शास्त्रो मे से ही सग्रह किया है जिसमें ५८४ गाथा है। ७३२ पन्ना का यह ग्रन्थ है। विशेषता यह है कि प्राय कर भावर्थ में विशेषार्थ मे लेखक महाशय ने जैन सिद्धांत से विपरीत कथन किया है। बहुत जगा पर मूल गाथा से भी विपरीत भावार्थ लीखा है। यह वीपरीतता का नाम ही वाक्य जाल है। यह दिखाते हू जिससे पाठक को विशेष लाभ होगा। श्रीमान ब्रह्मचारी महाराज की यह भूल दिखाने से वह उत्तर देने को तैयार नही है। किन्तु शास्त्रार्थ करने की धमकी देते है यह इस का महानपना है। इसी का नाम पंचम काल है किन्तु पंचम काल नही है। पंचम काल में जीव सम्यग्दर्शन

असभव है। अनुजीवी गुण सख्यात है उनमें से बहुत कम गुण को कर्मधात करते है। अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्वादि गुणों को कर्मधात नही करते है।

४–पृष्ठ २० पंक्ति ३ मिथ्यात्व रूप परिणाम का अभाव होने से जीव को अन्य कोई पदार्थ की अवलम्बन की जरूरत रहती नही है।

नोट–मिथ्यात्व छूट जाने से भी जीव को दश-प्राण का अवलम्बन रहते है यह प्रत्यक्ष प्रमाण है तोभी अवलम्बन रहते नहीं वह लिखना केवल वाक्य जाल है।

५–पृष्ठ २२ पंक्ति १० जीव को दूर्लभता दिखाते वह लीखते है कि विषयों से विरक्त होना अर्थात व्रत त्याग रूप परिणाम तथ ग्रम प्रशम रूप शुद्ध भाव सहित चित का होना महान कठीण है। कदाचित पुण्य योग से इमकी भी प्राप्ति हो जावे तो तत्त्व निर्णय होना अत्यन्त दूर्लभ है, यद्यपि पुन्योदय से यह भी प्राप्ति हो जावे तो अनेक ससारी जीव प्रमाद के वश होकर काम भोग अर्थ में लुब्ध होकर सम्यक् मार्ग से च्युत हो जाते है।

नोट–प्रथम तो विषयो से विरक्तादि होना पुन्योदय से यह चीज मिलती ही नही है यह तो केवल पुरुषार्थ

में गुरुपद को योग्य है ऐसा निर्गन्थ प्रसिदध वचन है। देखिये लिखते है और मानते नही है यही विनय मिथ्यात्व है। इस काल मे यह विनय मिथ्यात्व का साम्राज्य चल रहे है। देखिये सोनगढ़ के सद्गुरु श्री कानजी स्वामी जो अव्रती है इसी को भी गुरुदेव मानने में यही विनय मिथ्यात्व की महिमा है।

२–लेखक की अन्तस्तल स्पर्शनी विचार धारा के पृष्ठ १४ पंक्ति १३ पर लिखते है कि–"जगत मे सब द्रव्यो स्वतन्त्र है अर्थात कोई कोई के आधीन नही है जीव भी स्वतन्त्र है।"

नोट–जीव अनादि से कर्म से बन्धन मे है कर्मो के कारण वह अनेक अवस्था धारण करते है। यह प्रत्यक्ष प्रमाण होते भी जीव को स्वतन्त्र कहना केवल वाक्य जाल है।

३–पृष्ठ १६ पक्ति ६ आत्मा मे अनत गुण है और संसार अवस्था मे वे सब कर्मो से बधा हुआ है।

नोट–आत्मा मे अनन्त गुण है उनमे दो भेद है। १–अनुजीवी गुण, २–प्रतिजीवी गुण। प्रतिजीवी गुणो अनन्त होते है वह कभी भी विकारी होते ही नही है। यदि प्रतिजीवी गुण विकारी हो जावे तो आत्मा अन्य आत्मा रूप एवं जड़ रूप भी बन सकते है, किन्तु वह

प्राप्त होता है । उनमे प्रथम ही लब्धि क्षयापशम लब्धि है । आप लिखते है सम्यग्दर्शन हुवा बाद ही क्षयोपशम लब्धि होती है । क्या यह वाक्य जाल नही है ? मूल गाथामे आत्मानुभूति लीखी है और भावार्थमें आत्मानुभूति की अवज में क्षयोपशम लब्धि लिखते है वह उनके ज्ञान का विशेपता है ।

१०–पृष्ठ ८ तंक्ति १२ अनन्तानुबधी कषाय के तीव्र उदय से अनन्त संसार परिभ्रमण होते है । अति-तीव्र उत्कृष्ट मे उत्कृष्ट कषाय को अनन्तानुबन्धी कषाय कहते है ।

नोट–तीव्र और मन्द की अपेक्षा से अनन्तानुबन्धी आदि चार कषाय का भेद मानते है ऐसा नहीं है । पर पदार्थ में इष्ट अनिष्ट की कल्पना करावे वही अनन्तानुबन्धी कषाय है । अनन्तानुबन्धी कषाय में अति मंद तर भी भाव कर जीव नौवीं ग्रैवयेक कीं प्राप्ति हो जाती है । स्वरूप की घातकी अपेक्षा से यह चार कषाय के भेद है किन्तु तीव्र मन्द की अपेक्षा से भेद नही है ।

११–पृष्ठ ५३ पक्ति १ गाथा ५८ में लिखा है कि अविरत सम्यग्दृष्टि स्थावर तथा त्रस की हिसा विषे भी त्याग रहित है ।

भावार्थ–अव्रत सम्यग्दृष्टि दया भाव सहित है

से ही मिलती है। दूसरी बात प्रथम सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है बादमे ही व्रत त्याग यम प्रशनक्षा होती है जिसको आप प्रथम दिखाते हैं और सम्यक्त्व को बाद मे ही दिखाते है वही वाक्य जाल है। प्रमाद छट्टे गुण स्थान तक चला जाते है तब प्रमाद सम्यक् मार्ग से गिराते है वह कहना भी यथार्थ नही है। जीव अपनी स्वच्छद वृती से ही गिर जाते है। और कर्म के उदय ने गिर जाते है वहा जीव का पुरुषाथ काम ही नही करते वहां लाचारी है। यही यथार्थ स्वरूप है।

६–पृष्ठ २८ पक्ति ७ जहाँ किंचित मिथ्यात्व गले वहाँ फीर पराधीन होकर मिथ्यात्व गर्भित राग मे फस जाते है।

नोट–मिथ्यात्व गलते नही है छोटी से छोटी मिथ्यात्व की कणी का है वहां तक मिथ्यात्व है। राग पराधीनता से नही करते किन्तु स्वच्छदी बन कर करते है।

७–शास्त्र प्रारंभ पृष्ठ ४ पंक्ति ४ सम्यग्दर्शन प्रगट हुवा बाद ही आत्मा मे क्षयोपशम लब्धि प्रगट होती है किन्तु सम्यग्दर्शन हुवा बिना क्षयोपशम लब्धि कभी भी प्राप्त होती नही है।

नोट--पचलब्धि की प्राप्ति हुवा बाद ही सम्यग्दर्शन

१३—पृष्ठ ६८ पक्ति १७ मूल गाथा प्रवचनसार का है ना० १८६ जिसमे लिखा है कि—

यह जीव का बन्धन संक्षेप निश्चय भाखिया।
अरहन्त देव योगीने व्यवहार अन्य प्रकार कहा।।

भावार्थ—जो बन्धका निश्चय नय ग्रहण करने योग्य कहा है वह इसलिये कि यह जीव निज परिणाम से अपने को बन्धन रूप माने तब वह छूट सकते है इसी कारण ग्रहण योग्य कहा है। यदि वह पर द्रव्य से बंधा हुआ मानेगा तब ही रागादि परिणाम का त्यागी बनकर वीतराग परिणाम को धारण करेगा यही अभिप्राय से निश्चय बंध शुद्ध द्रव्य का साधक कहा है।

नोट—मूल गाथा कहती है कि निश्चय मे अपने राग से आत्मा बंधी है और व्यवहार से कर्म से बंधी है यह बंध का सार है। भावार्थ में लिखते हैं कि यह बन्ध रूप निश्चय नय ग्रहण करने योग्य है और निश्चय बन्ध शुद्ध द्रव्य का साधक है। हद कर डाली? बन्ध साधक कैसे हो सकते है? मूल गाथा में साधक बाधक का प्रश्न ही नहीं है। जब आत्मा पर द्रव्य से बन्धा माने तब रागादी का त्यागी कैसे बन सकते हैं? यही वाक्य जाल है।

१४—पृष्ठ ७० पक्ति २ गाथा ७७ अर्थ में

निरापराधी हिंसा करते नही उसे अविरत सम्यग्दृष्टि करते है।

नोट—अव्रती सम्यग्दृष्टि आत्मा प्रसंग पड जावे तो संकल्पी हिंसा भी कर जाते है जसे विभिषण ने राजा दशरथ पर बाण चला दिया। भरत महाराज ने बाहुबली पर चक्र चला दिया। सकल्पी हिसा के राग पहेली प्रतिमा मे छुट जाते है।

१२—पृष्ठ ६६ पक्ति १ शुद्ध नयका विषय एक अभेद नित्य चैतन्य चमत्कार अनन्त शक्ति वाला आत्मा है वह निज के अज्ञान अपराध से रागद्वेष रूप परिणमन करते है। ऐसा नही है कि निमित्त भूत पर द्रव्य जैसे परिणामे तेसा परिणमन करना पड़े ऐसा आत्मा पराधीन और पुरुषार्थ हीन नही है।

नोट—शुद्ध नय मे ससार और मोक्ष नही है। संसार और मोक्ष व्यवहार मे है। जसा मोहनीय कर्म का उदय होगा ऐसा ही आत्मा को परिणमन करना ही पडता है वहाँ आत्मा लाचार है क्योकि समयवर्ती पर्याय आत्मा के ज्ञान मे आती हा नही, इसी का नाम अबुद्धिपूर्वक राग है वहाँ आत्मा पराधीन है, किन्तु बुद्धिपूर्वक राग करना या नही करना उनमें आत्मा स्वाधीन है ऐसा समझना चाहिये।

आते ही हैं। जीव उनके फल में मोह करते है राग करते हैं द्वेष करते है अर्थात फल भोगने में तल्लीन हो जाते है।

भावार्थ–सम्यग्दृष्टि भव्यात्मा रागद्वेष झहेरो परिणामों को अपनी उपयोग भूमि में आने नहीं देता है। अर्थात वह स्वीकार नही करते है। उस रूप वह परिणमन नही करता हे किन्तु केवल ज्ञायक भाव से उदय जन्य विपाक का ज्ञान करता है वह ज्ञान स्वभाव से परिणमन करता है।

नोट–मूलगाथा कहती है कि संसारी जीव चारित्र मोहनीय कर्म के उदय मे राग द्वेष करते हैं तब भावार्थ में आपज्ञाता बताते है। ऐसा कोई सम्यग्दृष्टि है जो चारित्र मोहनीय कर्म के उदय में राग द्वेष रूप परिणमन न करते हो ? कदापी नही ? तो भी ज्ञाता रहता है वह वाक्य जाल है।

१७–पृष्ठ ८३ पंक्ति १० गाथा ८७ मूल गाथा तादात्म सम्बन्ध दिखाते है तब भावार्थ में जैसे एक भाव रूप परिणत होने वाले परमाणु अन्य परमाणु की साथ सयोग होते नही उसी प्रकार आत्मा का भी पर द्रव्यो को साथ में संयोग सम्बन्ध होते नही। और अशुद्ध पर्याय से भी सम्बन्ध नही है।

८० ८१ एवं सर्व विशुद्ध अधिकार गाथा ३१२–३१३ देखिये निमित्त भी कार्य रूप परिणम करते है।

१६–पृष्ठ ११५ पंक्ति ५ जहाँ उपादान हीन होय वहां निमित्त कारण क्या कर सकेगा ?

नोट–उपादान में चलने की शक्ति न होय तब वह मोटर, रेलगाडी आदि निमित्त ढूढते है वहाँ कौन बलवान है। निमित्त या उपादान ? देखनेकी शक्ति नहीं है तब चश्मा कौन लगाते हैं ? उपादान में बलहीन कहां से आया ? वह तो अनन्त शक्ति के धारक है बलहीन कहाँ से हुवा ?

२०–पृष्ठ ११५ पंक्ति २२ केवल ज्ञान की उत्पति मे राग द्वेष रहित स्वसंवेदन ज्ञान तथा आगम भाषा से शुक्ल ध्यान शुद्ध उपादान है।

नोट–वीतराग भाव १२ वा गुणस्थान के प्रथम समय में हो जाते है तो भी वहां केवल ज्ञान क्यों न हुवा ? जब तक ज्ञानावरण कर्म का क्षय नहीं होगा तब तक केवल ज्ञान नहीं हो सकते है। ज्ञान का रोकने वाले निमित्त का अभाव नहीं होगा तब तक केवल ज्ञान नहीं हो सकते है। मनमानी बात लीखना यही वाक्य जाल है।

२१–पृष्ठ १४३ पंक्ति १७ गाथा १६६ में लीखा

नही है वह लुखा ज्ञान का गाना गाता है ।

२३–पृष्ठ १७८ पंक्ति ५ गाथा ३१६ भावार्थ भेद ज्ञान के बल से निज आत्म वीर्य को जोड भाव को (उपयोग) मोह की प्रपच जाल से अलग कर शुद्धात्म स्वरूप के मनन मे उपयोग लगाना चाहिए। जैसे जैसे उपयोग आत्मा को और लगेगा वैसे वैसे दर्शनमोह सिथिल हो जावेगा।

नोट–मूलगाथा शुद्धोपयोग कर्म क्षय का कारण है। वहाँ मुनिराज को उपदेश है। आप भावार्थ में मनमानी लीखते है? भेद ज्ञान सम्यग्दर्शन हुवा बाद होते है या पहले? सम्यग्दर्शन हुवा पहले भेद ज्ञान कैसे हो जावेगा? शुद्धात्म स्वरूप मे उपयोग लगाने से दर्शन मोह नाश होगा या चरित्र मोह का? मिथ्या दृष्टि शुद्धात्म स्वरूप के मनन मे उपयोग कैसे लगा-येगा? गाथा के अनुसार टीका या भावार्थ नहीं लीख-ने से यह सब विटम्वना खडी हो जाती है। यही वाक्य जाल है।

२४–पृष्ठ १८१ पंक्ति १३ मूलगाथा २७० का अर्थ—आत्मा चेतना स्वरूप है स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण से रहित है। गुण और पर्याय सहित है। और उत्पाद व्यय ध्रौव्य कर सहित है।

द्रव्य का जो परिणमन है उससे संपूर्ण प्रदेशों मे परि-
वर्तन होते है। द्रव्य का परिवर्तन प्रदेशत्व गुण के
निमित्त से होता है।

नोट—मूलगाथा जीव का लक्षण दिखाती है जो
अभेद है जिसमें गुण पर्याय के भेद नहीं है और उस
ही गाथा के भावार्थ में गुण पर्याय के भद दिखाते है
यही वाक्य जाल है। सर्व गुणों के परिणनन अलग
अलग है, तो भी प्रदेश भेद नहीं है। ज्ञान गुण मे
क्रिया गुण का अभाव है, क्रिया गुण मे प्रदेशत्व गुण का
अभाव है तो भी प्रदेश भेद नही है। क्रिया गुण गमन
करे और ज्ञान गुण साथ में गमन न करे ऐसा नही
है क्योंकि वह सब अखन्ड है प्रदेश भेद नही है। द्रव्य
का परिणमन जब सब प्रदेशों मे होते है तो क्या ज्ञान
सब प्रदेशों में नही है ? द्रव्य परिणमन अगल है ज्ञान
दर्शनादि गुणों का परिणमन अलग होते भी अभेद है।
द्रव्य का परिवर्तन प्रदेशत्व गुण से होते है यह भी
यथार्थ नही है। सब जीवो की लम्बाई चौडाई समान
नही है तो भी जीव द्रव्य सब है। प्रदेशत्व गुण
आकार रूप है और जीव द्रव्य गति रूप है। प्रदेशत्व
गुण का घात करने वाला शरीर नाम कर्म है जब
द्रव्य को घात करने वाला गतिनाम कर्म है। प्रदेशत्व

कोई कारण नहीं है। द्रव्य कर्मो के सदभाव में स्वभाव पर्याय कभी भी प्रगट नही हो सकती है। कितना गलत अर्थ भावार्थ में लिखा हैं वही वाक्य जाल है।— विभाव पर्याय स्वभाव पर्याय की साधक कारण कभी भी नही हो सकती है वह नियम से बाधक कारण है। एक पर्याय का व्यय तब ही दूसरी पर्याय प्रगट होती है यही न्याय है।

२७—पृष्ठ २०१ पक्ति १६ गाथा २४८ भावार्थ— सम्यग्ज्ञान प्राप्त होने से सहज अर्थात क्लिेश किये विना मोक्ष पद की प्राप्ति होती है।

नोट—मात्र ज्ञान करने से मोक्ष पद की प्राप्ति होती नही है। सम्यग्ज्ञान चौथे गुण स्थान से प्राप्त हो जाते है यदि आचरण न सुधारे अर्थात रागद्वेप भाव को निवृती न करे तो मोक्ष की प्राप्ति तो दूर रही किन्तु आत्म शान्ति भी मिल सकता नहीं हैं। साक्षात मोक्ष का कारण ज्ञान नही है किन्तु चारित्र है। सारा आगम का सारा वीतरागता है। यह भूल जावे तो शान्ति मिलना दूर्लभ है। चारित्र रहित लुखा ज्ञान केवल बोजा रूप है। पूज्यता ज्ञान से नही आती है, किन्तु चारित्र से आती है।

२८—पृष्ठ २१३ पंक्ति २१ गाथा २६४ भावार्थ

द्रव्य योग कहते हैं। किन्तु आत्म प्रदेशो के परिस्पन्दन को द्रव्य योग कहना भूल है।

३० पृष्ठ २३० पंक्ति १८ गाथा २८२
आत्मा भेद ज्ञान के बल से ज्ञानी होते है तब कर्म का उदय आने से तप्तायमान होते हैं तो भी अपना ज्ञान स्वभाव से च्यूत नहीं होते हैं। यदि स्वभाव से च्युत हो जाय तब वस्तु का नाश हो जाय ऐसा न्याय है इसीलिये कर्म के उदय समय में सम्यग्ज्ञानी रागी द्वेषी मोही होते नहीं है।

नोट—अव्रत सम्यग्दृष्दि कर्म के उदय में तृत्पायमान होते हैं और रागोद्वेषो मोही होते नहीं यह लिखना उचित नही है। तप्तायमान का अर्थ ही राग से दुखो होता है। दूसरी बात यदि मिथ्यात्व का उदय आ जावे तो जोव द्रव्य का नाश कैसे हो जायेगा ? चैतन्य का तो नाश कभी होते नहीं किन्तु सम्यग्दर्शन रूपी पर्याय का नाश हो सकता है।

३१ पृष्ठ २३७ पंक्ति ११ गाथा २८६ विशेषार्थ-भेद ज्ञान की भावना से सम्यग्दर्शन होते हैं और भेद ज्ञान की स्थिरता से वीतरागता की प्राप्ति होती है। शरीरादि नोकर्म ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म क्रोधादि भाव कर्म यह सब पुद्‌गल द्रव्य के परिणाम होने से

३३–पृष्ठ २५६ पंक्ति २१ द्रव्य प्राणों रहित मुक्त जीवो में प्रधानता से ज्ञान चेतना और गौणता से कर्म चेतना कर्म फल चेतना होय है। और जो परम मुक्त जीव है उन्हें कर्म चेतना और कर्म फल चेतना सर्व प्रकार के नाश हो गये हैं वह सर्व प्रकार से अत्यन्त कृत कृत्य है उनको मात्र ज्ञान चेतना है। कर्म चेतना और कर्म फल चेतना दोनों अज्ञान चेतना है वह दोनों चेतना के धारक अज्ञानी मिथ्यादृष्टि होय है।

नोट—मुक्त जीवों में दो भेद पाड़ दिया। १-मुक्त जीव २-परममुक्त जीव, कितनो विटम्बना? द्रव्य प्राण रहित केवल सिद्ध परमात्मा है वहाँ भी गौणता से कर्म चेतना और कर्म फल चेतना होय है, वह लीखना वाक्य जाल बिना और क्या हो सकता है? दूसरी बात कर्म चेतना और कर्म फल चेतना मिथ्यादृष्टिओ को ही होती है वह लीखना उचित नही है। बुद्धिपूर्वक कर्म चेतना और कर्म फल चेतना छट्टा गुण स्थान तक होती है और वह चेतना के धारक को मिथ्यादृष्टि कहना केवल वाक्य जाल है। विचार किये बिना लिखना यह अपनी अज्ञानता है। और चेतना के विषय में क्या लिखते हैं जरा देखिये।

सम्बन्ध है। मनमानी लिखना इसो का नाम ही वाक्य जाल है। देखिये चेतना का लक्षण या वह चेतना किसे मानते है।

पृष्ठ २६३ पृष्ठ १ (उदय जन्य बुद्धि पूर्वक राग) और ज्ञान चेतना (मति ज्ञानावरण कर्म के विशेष क्षयोपशम को और स्वानुभूत्यावरण कर्म के क्षयोपशम को और लब्धिया वरण कर्म के क्षयोपशम को ज्ञान चेतना कहते है यह तीनो का एक ही अर्थ है।

नोट—मति ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम स्वानुभूत्यावरण कर्म का क्षयोपशम लब्धि या वरण कर्म के क्षयोपशम यह तीन एकार्थ कौनसे शास्त्र से निकाले ? ज्ञान चेतना या कर्म चेतना या कर्म फल चेतना वह ज्ञान गुण की पर्याय को मानते हैं जब वह तीन चेतना चारित्र गुण को पर्याय है। यह पहाड जितनी भूल है या नही ? शान्ति से विचारना। यह वाक्य जाल जीवो को फँसा देती है। और विशेषता देखिये ? वही पृष्ठ पर—(उदयजन्य बुद्धि पूर्वक राग) और ज्ञान चेतना की उपयोगिता होय है। निर्विकल्प समाधि में लीन यौगीयों के स्वानुभव ज्ञान चेतना अर्थात उपयोग आत्मक ज्ञान चेतना होय है। (उदयजन्य अबुद्धिपूर्वक राग)

भिन्न मानते है तो उसे छोड़ने को चेष्टा क्यों करते है ? शान्ति से विचारना। यह सब लीखने की विचित्र कला है। यही कला को वाक्य जाल बोली जाती है।

पृष्ठ २६१ पंक्ति १३ अज्ञान चेतना के दो भेद है। १–कर्म चेतना २–कर्म फल चेतना। ज्ञान बिना अन्य अनात्मीय भाव का अपने को कर्त्ता मानना उसे कर्म चेतना कहते है। और ज्ञान बिना अन्य अनात्मिक भावों में तल्लीन होकर नित्य उनका अनुभव करना वह कर्म फल चेतना है। वह दोनों चेतना संसार की जड। यद्यपि अज्ञान चेतना सम्यग्द्रष्टि के होय हैं किन्तु वह गोण है।

नोंट—देखिये अज्ञान चेतना के क्या लक्षण बनाया है और वह अज्ञान चेतना सम्यग्दृष्टि भी को होती हैं वह लीखना महान गलत है। अज्ञान चेतना मिथ्यादृष्टि जीव को ही होती है। किन्तु सम्यग्दृष्टि को कर्म और कर्म फल चेतना होती है वह अज्ञान चेतना नही है। विचार किये बिना लिख देना यही वाक्य जाल है।

३६–पृष्ठ २६२ पंक्ति १८ जिस समय आत्मा को ज्ञान गुण सम्यक् अवस्था को प्राप्त होता है उस समय में उसे ज्ञान चेतना कहते है। जिस समय सम्यग्दृष्टि शुद्धात्मा का अनुभव करता है उस समय चेतना को

यह गुण भेद नही जानने से भयंकर भूल हुई हैं। दूसरी बात उदयजन्य राग ज्ञानी के ज्ञान में आते ही नही क्योंकि छदमस्थ जीव के ज्ञान में यह शक्ति नहीं हैं कि वह समय समय की पर्याय जान सके। स्थूल राग को पकड़ सकते है।

पृष्ठ २८८ पंक्ति २१ गाथा ३५३ भावार्थ-सम्यग्दृष्टि को स्वात्मानुभव रूप मतिज्ञान विशेष उत्पन्न भाव होते है वह मति ज्ञान प्रत्यक्ष है और वही मति ज्ञान द्वारा स्वात्मा का अनुभव साक्षात्कार होते है।

नौट–सम्यग्दर्शन प्राप्त होते क्या मतिज्ञान का क्षयोपशम बढ जाते हैं? यह कहना उचित नही है क्योंकि शिवभूति मुनि को मतिज्ञान का क्षयोपशम बढा नहीं है। मति ज्ञान पर पदार्थ को देखता है तब आत्मानुभूति है या नही? आत्मानुभूति तो चारित्र गुण की पर्याय है ज्ञान की नही है। मति ज्ञान द्वारा क्या आत्मा को साक्षात देखलेते होगे? यह सब कल्पना है। आत्मा दीखा जाता नही है मति ज्ञान में यह शक्ति नहीं है। यह सब वाक्य जाल है।

२६–पृष्ठ २९० पंक्ति १६ गाथा ३५४ भावार्थ निश्चय नय से निर्विकारी शुद्धात्मानुभव सन्मुख जो मतिज्ञान है वहीं उपादेय है वही अनन्त सुख का

नोट—छद्मस्थ को क्षयोपशम ज्ञान है और केवलीं भगवन्त को क्षायिक ज्ञान है आपने दोनां समान मान लीया ? छद्मस्थ का ज्ञान इन्द्रिय आधीन है जिस कारण एक साथ में दर्शन और ज्ञान एक ही इन्द्रिय में साथ में उपयोग रूप होते ही नही । एक उपयोग रूप होगा तव दूसरा लब्धि रूप रहेगा यही क्षयोपशम ज्ञान का पराधीनता है । किन्तु केवली भगवन्त का ज्ञान दर्शन कर्मोपाधी रहित है अतिन्द्रिय है जिससे दर्शन तथा ज्ञानोपयोग साथ में ही होते है । तत्वार्थ सूत्र के दूसरे अध्याय में सूत्र नं० १८ में लीखा है कि "लब्धि उपयोग भावे न्द्रियम्" तो भी केवली के उपयोग को साथ में विरोध आवेगा यही लीखना वाक्य जाल है ।—छद्मस्थ को ज्ञान तथा दर्शन की लब्धि साथ रहती है किन्तु उपयोग एक पीछे एक ही होगा ?

४१—पृष्ठ ३०० पंक्ति ३ गाथा ३६१ "श्रुत दो प्रकार के है । १—भाव श्रुत २—द्रव्य श्रुत । भाव श्रुत का अर्थ है आत्मानुभूति और द्रव्य श्रुत का अर्थ है द्वादशाँग वाणी । अनुभूति ज्ञान है और द्रव्य श्रुत से उत्पन्न होने वाले ज्ञान भी ज्ञान है ।

नोट—आत्मानुभूति सम्यग्दृष्टि को ही होती है मिथ्यादृष्टि को होती ही नहीं तब वहाँ मिथ्यादृष्टि

श्रुत केवली अपतिपाद्य से परमार्थ प्रतिपाद्य बन जाते है यह कहना महान भूल है।

४३—पृष्ठ ३०१ पंक्ति १६ गाथा ३६३ भावार्थ जिस प्रकार श्रुत ज्ञान सम्पूर्ण द्रव्य और उनकी पर्यायो जानते हैं उसी प्रकार केवल ज्ञान भी सम्पूर्ण दृव्य और उनकी पर्यायो को जानते है। विशेषता इतनी है कि श्रुत ज्ञान इन्द्रिय और मन की सहायता से जानते हैं इसी कारण अमूर्त पदार्थो और उनकी अर्थ पर्याय और अन्य शुक्ष्म अंशों में स्पष्ट रूप से प्रबृति नहीं होती है किन्तु केवल ज्ञान निरावरण होने से सब पदार्थो को स्पष्ट रूप से जानते है।

नोट—श्रुत ज्ञान का अर्थ मति श्रुत ज्ञान नहीं लेना चाहिये किन्तु श्रुत अर्थात आगम से लोकालोक सब द्रव्यों और उनकी समस्त पर्यायों को परोक्ष जानते है। हम मेरू देखते नहीं है किन्तु आगम ज्ञान से कहेगा मेरू पांच हैं केवली भी पांच ही कहेगा यह गाथा का भावार्थ है।

४४—पृष्ठ ३०४ पंक्ति २० गाथा ३६५-३६६ जब आत्मा राग द्वेषादि विकल्पों से रहित भेद ज्ञान के बल से ध्यानस्थ (आत्म लीनता) हो जाय तब ही जीव

शुद्ध नय ही प्रयोजन भूत है। शुद्ध नय का विषय एक असाधारण ज्ञायक मात्र आत्मा है।

नोट—मूल गाथा पर्याय का विवेचन करतेहै भावार्थ में त्रिकाल पारिणामिक भाव का विवेचन कर रहे हैं। सम्यग्दृष्टि को त्रिकाल ज्ञायक स्वभाव का लक्ष होने पर भी राग का अनुभव करते हैं। तो भी राग का अनुभव नहीं कर सकते है लीखना केवल वाक्य जाल है। मूल गाथा का अर्थ अपने ज्ञान में आया ही नहीं।

४६—पृष्ठ ३१८ पंक्ति १३ राग द्वेषादि औदयिक भाव यद्यपि जीव के स्वतत्व रूप दिखलाने में आया है तो भी वह चेतन्य स्वभाव और अचेतन स्वभाव के संयोग रूप होने से यथार्थ नहीं है।

नोट—राग द्वेषादि भावो आत्मा में संयोग रूप है या तादात्म रूप है यह भी जानने में भूल कर जाते है। द्रव्य कर्म तो उस भाव में निमित्त है वह निमित संयोग रूप है किन्तु निज भाव संयोग रूप कैसे माने जावे ? वह आत्मा की ही वैभाविक पर्याय है। आत्मा से अभिन्न है।

४७—पृष्ठ ३१६ पंक्ति २ गाथा ३७१ समयसार गाथा १४ शुद्ध नम किसे कहते है इस विषय की है। उनके विशेषार्थ में लिखते हैं कि "अनेक विद्वानो ने अबद्धस्पष्टत्व पद का" अबद्ध अस्पष्ट ऐसा अर्थ किया

नोट—आत्मा का त्रिकाल स्वभाव ज्ञायक है। राग द्वेष और वीतरागता नही है। रागद्वेष और वीतरागता क्षणिक पर्याय है। मुक्त आत्मा में रागद्वेष रूप पर्याय नहीं है तब वहाँ वीतराग पर्याय है किन्तु मुक्तात्मा पर्याय बिना तो नहीं है। एक समय में एक ही पर्याय रहेगी या दो यह विचारने की शक्ति न रहीं जिससे राग द्वेष स्वभाव से आत्मा के नही है वह लीख दिया ?

४६—पृष्ठ ३२६ पंक्ति १८ गाथा ३७३ समयसार थागा ११ शुद्ध निश्चय नय के लक्षण—उपाधि रहित गुण गुणी के भेद रहित अभेद जिसका विषय है उसे शुद्ध निश्चय नय कहते हैं। जैसे केवल ज्ञानादि जीव है।

नोट—केवल ज्ञान पर्याय है यह शुद्ध निश्चय नय का विषय कैसे हो जावेगा ? आप खुद लिखते हो गुण गुणी भेद रहित तब यह केवल ज्ञानादि कहना वह भेद रूप है या अभेद रूप है ? शुद्ध नय का विषय मात्र चैतन्य ज्ञायक स्वभाव ज्ञान घन है, किन्तु केवल ज्ञानादि नही है।

५०—पृष्ठ ३४० पंक्ति २ गाथा ३८२ यही नियम सार ग्रन्थ की गाथा ५३ है।

गाथा ५३ सम्यक्त्व का निमित्त कौन है। भावार्थ–जिनेन्द्र भगवान की वाणी इच्छा रहित होते हुवे भी वह पौद्गलिक है। वाणी के उपादान कारण जड़ पुद्गल द्रव्य है और छद्मस्थ भव्य अभव्य की वाणी इच्छा पूर्वक होते हुवे भी (देखो नियमसार गाथा १७३-१७४) वही वाणी के उपादान कारण जड पुद्-गल ही है।

नोट–जिनेन्द्र की वाणी और अज्ञानी की वाणी का उपादान कर्ता जड पुद्गल होने से समान है किन्तु वाणी में उपादान कर्ता की मुख्यता नहीं है तब जिनेन्द्र देव और अज्ञानी दोनों समान हुवा ? दूसरी बात नियमसार ग्रन्थ में गाथा १७३–१७४ में वाणी के उपादान कर्ता का कथन नहीं है किन्तु वहाँ तो किस की वाणी से बन्ध होते हैं वह दिखाया है। वाणी पुद्-गल द्रव्य की प्रायोगिक परणति है जिससे उनमें निमित्त को ही मुख्यता है वही बात पंचास्तिकाय ग्रन्थ की गाथा ७६ में लिखा है कि

है शब्द स्कन्धोत्पन्न स्कन्धो अणु समूह सघात है।
स्कन्ध विधाते शब्द उत्पन्न नियम से उत्पाद्य है।

देखिये इसमें उपादान की मुख्यता है या निमित्त की मुख्यता है। दूसरी बात मूलगाथा सम्यक्त्व का

भाव कर्मों के जित सके उस वाणो को जिन वाणी कहते है। और जितनार को जिन कहते है।

नोट—केवली परमात्मा की वाणी पर आत्मा को समीचीन बोध न करावे तो वह वाणी जिन वाणी है। अन्यथा वह वाणो जिन वाणी नही है। इससे विशेष वाक्य जाल किसको कहना ? मूल गाथा को छोड़कर मनमानी बाते लिखना यही विचित्रता है।

५४—पृष्ठ ३४४ पंक्ति १५ गाथा ३८२ नियम-सार गाथा ५३ भावार्थ-प्रश्न-भगवान की देशना से भी यह जीव को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति न हुई और वही जीव को मिथ्यादृष्टि की वाणी जो वाणी जिन कथित है उससे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो गयी उनका क्या कारण है ?

उत्तर—जिस जीव का भगवान के समवसरण में ही मिथ्यात्व गलना आरम्भ हो गया था किन्तु सम्पूर्ण रूप से मिथ्यात्व का नाश होने का समम आया तब वह समवसरण छोड़ कर अन्य अभव्य मुनि के उपदेश में जाता ही दर्शन मोहनोय सम्पूर्ण गल जाने से अर्थात क्षय उपशम क्षयोपशम होते सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है।

नोट—देखिये कितना सुन्दर समाधान किया है।

निमित्त कौन है वही दिखाते है। आपने यह विचित्र बाते भावार्थ मे क्यो लिखा। यह सब वाक्य जाल है।

५२–पृष्ठ ३४२ पक्ति ५ गाथा ३८२ नियमसार गाथा ५३ भावार्थ–जिस वाणी से सात तत्वो का यथार्थ बोध होवे वही वाणी सुश्रुति है और जिस वाणी से आत्मा का यर्थाथ बोध न होवे वह वाणी द्रुश्रुति है। तो भी दोनो वाणी के उपादान कारण जड पुद्गल द्रव्य है।

नोट–यदि जिनेन्द्र भगवान की वाणी से सम्यक्त्व की प्राप्ति न होवे तब वह वाणी को द्रुश्रुति कहना चाहिये ? दूसरे जीवों को बोध होवे तो सुश्रुति अन्यथा दूश्रुति यह दुश्रुति और सुश्रुति पर जीवो के बांध पर है या वाणी पर है। जो वाणी वस्तु का अनेकान्त धर्म दिखाती हो स्यादवाद सहित हो जिसमे परस्पर विरोध न होवे वह वाणी सुश्रुति है और उनसे विपरोत वाणी दुश्रुति है। मनमानी लिख देना उसी का नाम वाक्य जाल है।

५३–पृष्ठ ३४२ पंक्ति १४ गाथा ३८२ नियमसार गाथा ५३ भावार्थ जिनवाणी उसे कहते है जिस वाणी से आत्मा को समीचीन बोध हो जावे वही बोध से भेद ज्ञान स्व-पर का यथार्थ ज्ञान होने से रागादि

और वही शुभ योग सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनों के होते हैं।

नोट—शुभ योग तो हित मित वचन को भी कहे जाते है किन्तु केवल हित मित वचन सम्यक्त्व में कारण नही है। यथार्थ में जिस वाणी मे तत्वो का यथार्थ निरूपण किया है वही वाणी रूप योग सम्यक्त्व मे कारण पड़ती है।

५७—पृष्ठ ३४८ पक्ति ५ गाथाना ३८५ नियमसार गाथा ११० ।

है कर्म मूल के छेद के सामर्थ जिस परिणाम में। स्वाधीन वह समभाव निज परिणाम आलुछन किये ॥

भावार्थ—भव्य को पारिणामिक भाव रूप स्वभाव होने से परम स्वभाव है वह परम भाव औदयिकादिचार विभाव स्वभावों उसके अगोचर है। इसीलिये वह पंचमभाव उदय, उदीरणा, क्षय, क्षयोपशम ऐसे विविध विकार रहित है। इसीं कारण यह एक की ही परम पना है। शेष चार विभाव भावों को अपर पना है।

नोट—मूल गाथा चारित्र अधिकार की है। ब्रह्मचारी जो ने उसे त्रिकाल स्वभाव मान लिया यही

मूल प्रश्न देशना लब्धि किसकी वाणो सूनने से होती है यह है। मिथ्यात्व अंश में गलने लगा और सपूर्ण गल गया कितना विटंम्बना है ? प्रायोग लब्धि करण लब्धि विना ही सूनते सूनते सम्यग्दर्शन हो गया कितनी विचित्रता ? भैया यह सब वाक्य जाल है विशेष हम क्या कहे।

५५–पृष्ठ ३४५ पंक्ति १८ गाथा ३८२ नियमसार गाथा ५३ भावार्थ–छन्दमस्थ उनको कहते है जिनका ज्ञान सम्पूर्ण पदार्थो को जानना अशक्त है तब उसकी भूल होना क्या शक्य नही है ? छद्मस्त भूल कर सकते है केवली भगवन्तो भूल नही कर सकते।

नोट–गणधर देव छदमस्थ है वह भी सिद्धान्त मे भूल करते होगे ? क्योंकि छदमस्थ भूल कर सकते है यह नियम बनाया। कितनी विचित्रता। मूल गाथा छोड़कर कितनी अटपटी बाते लिखी ? यह सब अपनी चतुराई दिखलाना है। विषय से विपयान्तर जाना वही सबसे बडो भूल है। भावार्थ मे पाँच दश पन्ना लिख डालना उचित मार्ग नही है।

५६–पृष्ठ ३४६ तंक्ति ४ गाथा ३८२ नियमसार गाथा ५३ भावार्थ–देशना में अन्य जीव का सम्यग्दर्शन कारण नही पड़ते हे किन्तु शुभ योग ही कारण है

तो भी वह पचम गुणस्थान को स्पर्श क्यों नहीं करते हैं। दूसरी बात क्षायिक भाव का अंश प्रगट होते ही नहीं वह तो पूर्ण प्रगट होती है और वह परम पारिणामिक भाव के अवलम्बन से नहीं किन्तु चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय से ही क्षायिक भाव प्रगट होते है। मूल गाथा आलुंछन किमे कहते है और विशेषार्थ कहा का लिख रहे है। यही निरर्थक वाक्य जाल है।

५६–पृष्ठ ३५१ पंक्ति ८ गाथा ३८५ नियमसार गाथा ११० सारांश–परमात्म तत्त्व का जघन्य आश्रय सम्यग्दर्शन से प्रारम्भ होते है। मध्यम आश्रय की भूमिका देशविरत सकल संयम से बढ़ते बढ़ते तेरहवे गुण स्थान मे पूर्ण आश्रय होते केवल ज्ञान और सिद्धत्व प्राप्त कर कृतार्थ होते है।

नोट–श्रद्धा एक किसम की होती है उसमे जघन्य मध्यम और उत्कृष्टके भेद नही है। जितने जितने अश में चारित्र मोहनीय कर्म का उपशम होते जावेगा इतने अंश में स्थिरता चारित्र में आती है। सम्यग्दर्मन में नहीं। परम पारिणामिक भाव अखन्ड है उनमें जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट के भेद ही नहीं है। चारित्र मोहनीय का क्षय होते भी केवल ज्ञान नहीं हो सकते है। केवल ज्ञान का कारण ज्ञानावरण कर्म का

उनकी विचित्रता है। दूसरी बात क्या क्षायिक भाव उपशम भाव विभाव है ? यह भाव की चाहना चारित्र पालन करनार योगी स्वय चाहते है क्योंकि परम पारिणामिक भाव तो त्रीकाल है उनकी चाह कैसे करे ? आलोचना मुनिराज करते है वह खुद उसी काल मे क्षयोपशम भाव मे ही है। यह क्षयोपशम भाव दशवा गुण स्थान तक चला जाता है। तो भी क्षायिक उपशम भाव को अपर भाव कहना कितनी विटम्बना है। यही वाक्य जाल है।

५८—पृष्ठ ३५० पंक्ति १७ गाथा ३८५ नियमसार गाथा ११० विशेषार्थ-शुद्धात्मद्रव्य सामान्य का अवलम्बन केवल करने से (परम शुद्ध पारिणामिक भाव का) क्षायिक भाव रूप शुद्ध पर्याय प्रगट होते है किन्तु क्षायिक भाव के अंश रूपी शुद्ध पर्याय के अवलम्बन से क्षायिक भाव रूप शुद्ध अवस्था प्रगट होती नही है।

नोट—त्रिकाल परम पारिणामिक भाव को चौथे गुण स्थान मे जान लिया वही अवलम्बन लिया कहा तो भी उनके अवलम्बन मे चारित्र मोहनीय कर्म का नाश नही होने यदि होते हो तो सर्वार्थसिद्धि देवने वह परम पारिणामिक भाव का अवलम्बन लिया है,

बड़ी वाक्य जाल है। संभालना मकडी की तरह फस नहि जाना।

६१—पृष्ठ ३५२ पंक्ति ३ गाथा ३८५ नियमसार गाथा ११० मूलगाथा आलुंछन का स्वरूप दिखाते हैं और भावार्थ में क्या लिखते है वह देखिये। यह निरंजन निरंजन निरावरण निरपेक्ष निज परमाप्म तत्व के आश्रयेसर्व मुमुक्षुओं भूत कालमें पंचम गतिको प्राप्ति हुवे है वर्तमान काल में अन्य क्षेत्र से जाते है, और भावी काल मेंजायगे। यह परमात्म तत्त्व सब तत्त्वों में सार है। त्रिकाल निरावरण नित्यानन्द एक रूप अनादि अनन्त स्वभाव अनन्त चतुष्ट से सनाथ है आनन्ददाता है सुख सागर के पुर है क्लेशोदधि का किनारा है चारित्र के मूल है मुक्ति के साक्षात कारण है।

नोट—यदि परमात्व तत्त्व सुख सागर है तब दुःख कहाँ से आया? नित्यानंद है तब आकुलता कहाँ से आया? चारित्र के मूल है तब अचारित्र कहाँ से आते है उनकी खान कौन है? केवली ज्ञानी अनन्त चतुष्टय रूप हो गये तो भी सिद्ध पर्याय प्रगट क्यों नही करते है। यह जो गाना गाया है वह ऐसा स्वरूप नही है वह अखण्ड है जिसमें गुण गुणो भेद नही है गुण पर्याय भेद नही ऐसा मात्र जीव का स्वभाव है। स्वभाव की

अभाव है और सिद्ध पर्यायका कारणगतिनामा नामकर्म का अभाव है। परम पारिणामिक भाव नही है। परम पारिणामिक भाव तो लक्ष श्रद्धा का विषय है और श्रद्धा मे चारित्र ज्ञानादिक का अन्योन्य अभाव है।

६०–पृष्ठ ३५१ पंक्ति १३ गाथा ३८५ नियमसार सारांश–परमात्म तत्त्व का आश्रय सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र से प्रारम्भ होते उनका निश्चय साधन रूप सत्यार्थ प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, प्रायश्चित, सामायिक, भक्ति, आवश्यक, समिति, गुप्ति, सयम, तप से वह निर्जरा धर्म ध्यान शुक्ल ध्यान आदि सब उस रूप है अर्थात वह निश्चय की प्राप्ति के साधन भूत व्यवहार प्रतिक्रमण व्यवहार प्रत्याख्यान आदि ऊपर में जो निश्चय मे लिखा या किया वह सब शुभ विकल्प रूप भाव परम्परा मोक्ष के कारण होने से उसे व्यवहार मोक्ष मार्ग कहने मे आते है।

नोट–देखिये टके शेर भाजी टके शेर खाजा। सवर, निर्जरा, धर्म ध्यान, शुक्ल ध्यान को भी शुभ विकल्प कह दिया यही तो तत्त्व ज्ञान का महिमा है। जो साक्षात मोक्ष रूप उसे मोक्ष के कारण कहते है और वह कारण शुभ विकल्प रूप ? कितनी विचित्रता ? लिख गये किन्तु विचार किया नही। यह सबमे

रूप ज्ञानोपयोग तीन प्रकार के है। कुमति कुश्रुति कुअवधि।

नोट—विभाव ज्ञान में अज्ञान रूप विभाव दिखाया किन्तु विभाव सुज्ञान नही दिखाया। जैसे स्वभाव ज्ञान में कारण कार्य है उसी प्रकार विभाव ज्ञान मे कारण कौन है? वह ज्ञान कहां से आते है वह दिखाया ही नहीं।

६२—पृष्ठ ३५३ पंक्ति २३ गाथा ३७६—३८७—३८८ नियमसार गाथा १०—११—१२

भावार्थ—केवल ज्ञान असहाय है व कार्य स्वभाव ज्ञान है। कारण ज्ञान भी ऐसा ही है। कैसे? निज परमात्मा में रहने वाले सहज दर्शन, सहज चारित्र, सहज सुख, सहज परम चित्त शक्ति रूप निज कारण समयसार के स्वरूप को जानने में समर्थ होने से वैसा ही है।

नोट—यदि कारण ज्ञान देखते है तो वह कारण ज्ञान निगोद में भी है वह अपना ज्ञान का उपयोग कभी कर ही नहीं सकते हैं तब वहां कारण ज्ञान जो है वह क्या कर्ता है? क्या कारण ज्ञान कभी देख सकते है? देखना पर्याय में हो होती है। वह कारण ज्ञान चारित्र सुखादि को यदि देखते हैं तो क्या वह कारण

६४--पृष्ठ ३५७ पंक्ति ८ गाथा ३८६-३८७-३८८ नियम सार गाथा १०-११-१२ विशेषार्थ—चैतन्यानुविधायी परिणाम वह उपयोग है। अर्थात आत्मा के चैतन्य गुण की साथ बर्तन करने वाले जो परिणाम वह उपयोग है। और वही धर्म है। वह दो प्रकार के है॥ १—ज्ञानोपयोग २—दर्शनोपयोग।

नोट—ज्ञानोपयोग दर्शनोपयोग सब जीव में है तो भी वहां धर्म का अश भी नही। धर्म चारित्र को ही जीनागम में कहा है। प्रवचनसार गाथा ७

चारित्र है सो धर्म है वह धर्म है सो साम्य है। वह साम्य जीवका मोह क्षोभ रहित निज परिणाम है।

६४—पृष्ठ ३५८ पंक्ति १२ गाथा ३८६-३८७-३८८ नियमसार गाथा १०-११-१२ कारण स्वभाव ज्ञानोपयोंग—वह कार्य स्वभाव रूप निज परमात्म स्वभाव में स्थित रह कर सहज दर्शन, सहज चारित्र (सदा अंतर्मुख ऐसा स्वरूप में अविचल स्थिति रूप सहज परम चारित्र) सहज सुख (सदा सहज परम वीतराग सुखामृत स्वरूप) सहज परम चित शक्ति (अप्रतिह निरावरण परम चित्त शक्ति) ऐसा अनंत चतुष्टय रूप निज कारण समयसार का एक ही समय

हैं। संसारी सब जीवों का ज्ञान क्षयोपशम रूप है वह क्या पारिणामिक भाव में से निकलते हैं। पंचास्तिकाय ग्रन्थ गाथा ५७ में लिखते हैं कि—

पुद्गल कर्म बिना जीव को उपशम उदय क्षायिक और क्षयोपशम भाव न होय इसलिये वह कर्मकृत भाव हैं।

जो केवल ज्ञान का कारण है वही मतिज्ञान का कारण है वहां मतिज्ञान को तो विभाविक ज्ञान कहा है वह उपादेय कैसे होवे ? हेय उपादेय पर्याय में होते हैं या गुण में ? विचार मंगता है। केवल मनमानो लिखना इसी का नाम वाक्य जाल है।

६६—पृष्ठ ३६१ पंक्ति १ गाथा ३८६-३८७-३८८ नियमसार गाथा १०-११-१२ साराँश—कार्य स्वभाव ज्ञानोपयोग जैसा वर्तमान है वैसा उनका कारण ऐसा कारण स्वभाव ज्ञानोपयोग है वह भी तैसे ही अप्रगट रूप परिणमन शील है। इसी कारण उसे कुटस्थ कहा है।

नोट—परिणमन शील कहना और कुटस्थ भो कहना यह विचित्रता है। कारण ज्ञान भी समय समय में प्रगटरूप परिणमन करते है जिनको समय समय में ध्रौव्य पर्याय कहते है। उत्पाद व्यय और ध्रोव्य मिलकर सत् होते है। इसी कारण वह अप्रगट रूप

६८–पृष्ठ ३६२ पंक्ति १४ गाथा ३८६-३८७-३८८ नियमसार गाथा १०-११-१२ सारांश–कारण ध्रुव पर्याय आनन्द दाता हैं उनकी कार्य पर्याय (केवल ज्ञान)साक्षात आनन्द का अनुभवसादो अनन्तकाल करते है।

नोट–यदि कारण ध्रौव्य पर्याय आनन्ददाता है तो उनकी कार्य पर्याय कुमति कुश्रुन ज्ञान आनन्ददातार है या नही ? शान्ति से विचार किजिये। निगोद जीव में कार्य पर्याय है वहाँ तो सुख की बात छोडीये किन्तु अपना कुमनि कुश्रुत ज्ञान का कभी भो अनुभव भी नहो किया तब वहाँ कार्य ध्रौव्य पर्याय ने आनन्द क्यों न दीया ? यह सब समझने को बात है। केवल वाक्य जाल उनमें भोले जोव फंस जाते हैं।

६६–पृष्ठ ३६३ पंक्ति ४ गाथा वही,

सारांश–वस्तुये कारण परमात्मा है उनमें लवलीन हो जाना वह चारित्र है। द्रव्य कारण है ओर ज्ञान दर्शन चारित्र कार्य है।

नोट–द्रव्य कारण हुवे तब द्रव्य की पर्याय कार्य हुवे किन्तु गुण का पर्याय कार्य कैसे हो जावे ? द्रव्य कारण है उनकी तिर्यंच नारक देव मनुष्य कार्य है यह कर्म जनित पर्याय है, और वह द्रव्य कारण है सिद्ध

७१–पृष्ठ ३६३ पंक्ति १६ गाथा ३८६-३६०
नियमसार गाथा १३-१४

उपयोग दर्शन का स्वभाव विभाव रूप द्विविध है।
असहाय इन्द्रिय विहीन केवल वह स्वभाव कहाँ हैं।।
चक्षु अचक्षु अवधि तीन दर्शन विभाविक कहाँ है।
निरपेक्ष स्वपरापेक्ष ऐसे दो भेद है पर्याय के।।१४

भावार्थ पृष्ठ ३६४ पंक्ति ७ दर्शनोपयोग स्वभाव विभाव एसे दो प्रकार के है। स्वभाव दर्शनोपयोग भी दो प्रकार के है। एक कारण स्वभाव दर्शनोपयोग दूसरा कार्य स्वभाव दर्शनोपयोग कारण स्वभाव दृष्टि निज स्वरूप की श्रद्धा मात्र है।

नोट–सामान्य अवलोकन दर्शन गुण की यह गाथा है और आप कारण स्वभाव दर्शन को श्रद्धा में ले गये। जिस कारण स्वभाव उपयोग छोड़कर स्वभाव-दृष्टि लिखी और निज स्वरूप की श्रद्धा मात्र है यह सम्यग्दर्शन है किन्तु कारण दर्शनोपयोग नही है कारण दर्शनोपयोग दर्शन गुण है जो त्रिकाल है और उन गुण की ही यह चार पर्यांय है। एक स्वभाव पर्याय केवल दर्शन और तीन विभाव पर्याय चक्षु अचक्षु और अवधि दर्शन है।

और विशेषता देखिये–कारण दर्शनोपयोग सदा

भावार्थ—स्वभाव पर्याय दो प्रकार की हैं। पहली कारण शुद्ध पर्याय दूसरी कार्य शुद्ध पर्याय। शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा से आदि अनन्त रहित अमूर्तिक अतीन्द्रिय स्वभाव से शुद्ध स्वभाविक सहज ज्ञान शुद्ध स्वभाविक दर्शन शुद्ध स्वभाविक चारित्र शुद्ध स्वभाचिक परम वीतराग सुख रूप शुद्ध अंतरंग तत्त्व रूप स्वभाव मय अनन्त चतुष्टय शाश्वत एक ध्रुव रूप रहेल पंचम भाव रूप परम शुद्ध पारिणामिक भाव की परिणति है वही कारण शुद्ध पर्याय है।

नोट—यह गाथा द्रव्य पर्याय की है गुण पर्याय की नही है। जीव द्रव्य कारण है और सिद्ध पर्याय कार्य स्वभाव पर्याय हैं। द्रव्य को छोड़कर सहज ज्ञान, सहज दर्शन, सहज चारित्र गुण रूप और परम वीतराग यह शुद्ध निश्चय नय के विषय ही नहीं हैं। यह तो व्यवहार नय के विषय हैं। द्रव्य की पर्याय में गुण का वर्णन करना केवल वाक्य जाल है। नियमसार गाथा १६ में लिखा है कि।

पूर्वोक्त पर्यायो से व्यतिरित है जीव द्रव्यार्थि के।
और युक्त पर्यायो से है संयुक्त पर्यायार्थि से ॥

शुद्ध निश्चय नय गुण गुणी, गुण पर्याय की

अर्थ पर्याय कही है। मूल दो प्रकार के गुण को बताया ही नहीं और विषय से विषयान्तर में चले गये ? यही वाक्य जाल है। इनसे और वाक्य जाल क्या हो सकता है।

७४–पृष्ठ ३७० पंक्ति १४ गाथा ३६१ नियमसार गाथा १५

"जिसमें रागद्वेष मोह और ख्याती, लाभ, पूजा की इच्छा नहीं है ऐसा जिनेन्द्र परम वीतरागी सर्वज्ञ परमात्मा है उनका पूर्व काल में बांधा हुवा शुभ वचन वर्गणा के उदय से भव्य जीवों के पुण्य कर्म के निमित्त से वीना इच्छाये शुभयोगे स्वयं सत्यार्थ वस्तु स्वरूप का कथन करते है।

नोट–तीर्थंकर भगवान की वाणी सत्य और अनुमय दो प्रकार से खीरती है केवल सत्य नहीं। तीर्थंकर देव को ख्याती लाभ पूजा की इच्छा बीना लीखना उचित नहीं है। भव्य जीवों के पुण्य कर्म के उदय से वाणी निकलती है, तब जब वाणी बन्ध हो जाती है तव क्या सव जीवों का पाप कर्म का उदय आ गया ? ऐसा नहीं है। भगवान महावीर की वाणी छासठ दिन न खीरी तब क्या वहां सर्व जीव का पाप कर्म का उदय था ? क्या भगवान को शुभ योग है या

विभाव और स्वभाव पर्याय की है और विशेषार्थ में विषय से विषयान्तर कितना करते है वही वाक्य जाल है।

७५–पृष्ठ ३७२ पंक्ति ८ गाथा ३६१ नियमसार गाथा १५

विशेषार्थ–शुद्ध सदभूत व्यवहार से सादि अनन्त अमूर्तिक अतीन्द्रिय स्वभाव वाली केवल ज्ञान, केवल दर्शन, केवल सुख, केवल वीर्य रूप अनन्त चतुष्य को साथ रहेली परम उतकृष्ट क्षायक भाव की शुद्ध परिणति है वही कार्य शुद्ध पर्याय है। इदर चार गुणों साथ अनन्त गुणों की क्षायिक रूप परिणति हो गये है। चार घाति कर्मो के नाश से क्षायिक भाव उत्पन्न हुवा है।

नोट–अनन्त चतुष्टय तो तेरह वे गुण स्थान में हुवा है वहां द्रव्य की शुद्ध कार्य पर्याय नहीं है शुद्ध कार्य पर्याय सिद्ध पर्याय है। चार गुण की साथ अनन्त गुण की क्षायिक पर्याय कैसे हो गई ? क्या आत्मा के अनन्त गुण विकारी कभी होते है ? यदि अनन्त गुण विकारी हो जावे तो उन गुण को कोनसा कर्म घात करते है ? गुण दो प्रकार के है ? १ अनुजीवी गुण २ प्रतिजीवी गुण। अनुजीवी गुण अनन्त

प्रारम्भ हो जाते हैं यद्यपि चोथे गुणस्थान में निर्जरा की प्रधानता नही है तो भी अंश में निर्जरा अवश्य है। मूल गाथा से भावार्थ कितना गलत लिखते हैं। भूलगाथा में संवर निर्जरा का कथन हो नहीं है वहां तो बन्ध आर निरबन्ध का विषय है।

७७–पृष्ठ ३७३ पंक्ति २ गाथा ३६२ "भावार्थ क्षायिक केवल ज्ञान हुवा पहले जीव को क्षयोपशम ज्ञान होय है। क्षयोपशमिक श्रुत ज्ञान सम्यग्दर्शन सहित होने से वोतरागता का अंश सहित होय है और जब वह ज्ञान परमात्मानुभव में लीन होते है तब विशेष वीतरागता प्रगट होता है। उसे त्रितरागता में तन्मय पना विशेष प्रबल अविपाक निर्जरा का कारण है।

नोट–चौथे गुण स्थान में आत्म चिन्तवन करते है वहां वोतरागता कम है। और पञ्चम गुण स्थान में विषयो में है वहां वीतरागता विशेष है तों क्या ज्ञान वीतरागता कारण है ? या कषाय की निवृती वीतरा- का कारण है। अविपाक निर्जरा मिथ्यादृष्टि जोव को पुन्य भाव से होतो है। मोक्षमार्ग मे अविपाक निर्जरा की मुख्यता नही है किन्तु भाव निर्जरा की प्रधानता है।

७८--पृष्ठ ३७३ पक्ति १५ गाथा ३६२ भावार्थ

आत्मा को पाते है। और अशुद्ध आत्मा को जानते जीव शुद्ध आत्मा को पाते हैं।

शंकाकार—हे भगवन्त ? केवल ज्ञान शुद्ध है और छद्मस्थ का ज्ञान अशुद्ध है तब वह अशुद्ध ज्ञान केवल ज्ञान का कारण कैसे हो सकते है ?

उत्तर—हे शिष्य ? छद्मस्थ का ज्ञान कथंचित शुद्ध और कथंचित अशुद्ध है। यद्यपि वह केवल ज्ञान की अपेक्षा शुद्ध नहीं हैं तो भी मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी रहित सराग सम्यग्दर्शन और सराग चारित्र को अपेक्षा से और वीतराग (राग द्वेषादि से रहित) सम्यग्दर्शन और सम्यग्चारित्र की साथ होने से शुद्ध है और अभेद नय से छदमस्थ का जो भेद ज्ञान है. वही आत्मा का स्वरूप हैं उससे एक देश प्रगट रूप आत्मानुभव रूप ज्ञान से सर्व प्रकारे व्यक्त रूप केवल ज्ञान उत्पन्न होय है उनमें कोई दोष नही है।

नोट—एक देश आत्मानुभुति चौथे गुण स्थान में हो जाती है तो क्या वहाँ भी केवल ज्ञान हो सकता है ? कितना गलत जबाब दिया है। क्षयोपशम ज्ञान के अभाव से हो क्षायिक ज्ञान होते है या क्षयोपशम ज्ञान के सद्भाव से ? ज्ञानावरण कर्म का अत्यन्त अभाव से केवल ज्ञान होते हैं। यह परमार्थ जबाब है।

केवल ज्ञान क्षायिक शुद्ध ज्ञान है वही आत्मा का निज स्वभाव है। वह सिद्धों में भी रहते हैं। उनको शुद्ध पारिणामिक भाव भी कह सकते हैं क्योंकि निज पारिणामिक भाव सन्मुख जो आत्मानुभव स्वभाव रूप भाव था वही एक देश शुद्ध पारिणामिक भाव कहा जाता है। चारित्र की अपेक्षा में वही भाव को बारवां गुणस्थान के नीचे क्षयोपशम चारित्र उपशम चारित्र और क्षायिक श्रेणी की अपेक्षा एक देश क्षायिक चारित्र और बाद में क्षायिक अथवा यथाख्यात चारित्र कहते हैं।

उत्तर—हे भव्य ! केवल ज्ञान की पहेले परम पारिणामिक भाव छद्मस्थ अवस्था में शक्ति मात्र से शुद्ध पना है किन्तु व्यक्त रूप से शुद्धपना नहीं है।

नोट—शिष्य का क्या प्रश्न है और जबाब क्या दिया है ? छद्मस्थ जोव में ज्ञान का क्षयोपशम भाव नियम से रहते है, ज्ञान का पारिणामिक भाव कभी होते ही नही है। दूसरी बात परम पारिणामिक भाव शक्ति रूप से शुद्धपना है तो ऐसा शुद्धपना निगोदीया जोव में भी होना चाहिये तब वह निगोदिया परम पारिणामिक भाव के कारण सम्यग्दर्शन को प्राप्ति कर लेवेगा ? सब जीवों में वह परम पारिणामिक भाव शक्ति रूप है किन्तु उनका व्यक्तपना होते ही नहीं। केवल ज्ञान का कारण परम पारिणामिक भाव नहीं है किन्तु क्षयोपशम भाव का अभाव और ज्ञानावरण कर्म के अत्यन्त नाश से क्षायिक भाव रूप केवल ज्ञान को प्राप्ति होती है किन्तु परम पारिणामिक भाव से नही। इतना जबाब देना चाहिए इतना जबाब न देकर कितना विटम्बना रूप वाक्य जाल फेलाया है।

८१—पृष्ठ ३७६ पंक्ति १५ गाथा ३९३

भावार्थ—शुद्ध पारिणामिक भाव जो है वह एक देश व्यक्त रूप ऐसे कथंचित भेद और अभेद रूपद्रव्य

सका भी आपने उट्‌ठाइ है और जवाब कीतना गलत देते है यही वाक्य जाल है।

८०—पृष्ठ ३७५ पंक्ति ६ गाथा ३६३ भावार्थ।

शंकाकार—हे भगवन्त ? छद्मस्थ का ज्ञान कर्मों के आवरण सहित है और क्षयोपशमिक भाव रूप है उनसे शुद्ध कैसे हो जाय और उस ज्ञान से मोक्ष भी कैसे हो जावे ?

उत्तर—हे भव्य ! केवल ज्ञान की अपेक्षा से छद्-मस्थ का ज्ञान आवरण सहित है तो भी एक देश क्षयोपशम ज्ञान निरावरण है।

निर्विकल्प भाव से निज आत्मा का अनुभव करते हैं तब ही मति श्रुत ज्ञान मोक्ष के कारण होते है।

नोट—प्रश्न क्या किया है और उत्तर केसा दिया है। मोक्ष का कारण केवल ज्ञान है उनको न बताकर कितनी बिटम्बना की ? यही वाक्य जाल है।

८३—पृष्ठ ३७७ पंक्ति २१ गाथा ३६३ भावार्थ शंकाकार—है भगवन्त ? तपश्चरण प्रवज्या सूत्रादि को ज्ञान कहा है वह कौनसी नय से कहा है ?

उत्तर—है भव्य ! मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर क्षीण कषाय बारवा गुणस्थान तक अपने अपने गुणस्थान के योग्य अशुभ शुभ और शुद्ध उपयोग होय है उनकी साथ अबिनाभूत प्रसिद्ध अशुद्ध निश्चय नय अर्थान अशुद्ध उपादान रूप से नीचली अवस्थाओं में ज्ञान ही कहा है।

नोट—चौथे गुणस्थान में संयम प्रवज्या नहीं है तो क्या अशुद्ध निश्चय नय से उसे संयमी कहा जावेगा ? कदापि नही। उसे अव्रती सम्यग्दृष्टि ही कहा जाता है। सब गुणस्थान का अलग अलग नाम क्यों रखा है। एक ज्ञान ही गुणस्थान कहना था किन्तु ऐसा कहा तो नही है। यह नया नय आपने कहां से

वहां दश प्राण का प्रश्न हो कहां है ? चौथी बात भव्यत्व भाव पारिणामिक भाव है उसे कर्म कैसे घात करेंगे ? उसने कर्म तो बांधे ही नही हैं तब घात का प्रश्न ही कहां रहा ? देखिये मूल गाथा से भावार्थ कितने विपरीत है ? यही वाक्य जाल है।

८५-पृष्ठ २८१ पंक्ति १५ गाथा ३६४-भावार्थ परम शुद्ध पारिणामिक भाव की प्राप्ति के हेतु भूत औपशमिक क्षयोपशमिक और क्षायिक यह तीन भाव है। वह रागद्वेषादि भावो से रहित होने के कारण शुद्ध उपादान होने से मोक्ष का कारण होते है। परम शुद्ध पारिणामिक भाव मोक्ष के कारण नही है और और जो शक्ति रूप मोक्ष है वह परम शुद्ध पारिणामिक भाव रूप प्रथम से ही विराजमान है।

नोट-पारिणामिक भाव कर्म निमित्त रहित होते है उनका हेतु कर्म उपाधी वाले उपशम क्षयोपशम क्षायिक कैसे हो जावे ? कर्म के अभाव से शुद्ध उपादान हुवा है कि अपनी शक्ति से ? परम पारिणामिक भाव मोक्ष के कारण नही है तब उनकी इतनी महिमा किस बात की है ? महिमा तो क्षायिक भाव की है। वह क्षायिक भाव न हुवे तो क्या परम पारिणामिक भाव जो शक्ति रूप विराजमान है उसे मोक्ष हो

अवस्थाका स्वामी बनता है वही उनकी अज्ञान अवस्था संसार है।

नोट—निमित्त नैमित्तिक अवस्था दो द्रव्य मे ही होती है और दोनो द्रव्य विकारी है और अरसपरस बंधन मे है। अरसपरस बधन बिना निमित नैमितिक सम्बन्ध नही हो सकते है। दो द्रव्यो मे जो बलवान है वह निमित्त है और निमित्त के अनुकूल अपनी परिणती करते है वह नैमितिक अर्थात पराधीन है। नैमितिक पर्याय के साथ मे द्रव्य का तादात्म सम्बन्ध है किन्तु वह क्षणिक है। अपनी पर्याय का स्वामी बनने में और तन्मय होने में अज्ञान कौनसा आ गये ? परद्रव्य की पर्याय का स्वामी बनना वह अज्ञान है। आपने निमित शब्द में मात्र लगाकर निमित्त को मुख्यता न बताकर उदासीन बना दिया ? यही भूल है। निमित्त नैमितिक सम्बन्ध मे तीनो काल निमित्त की ही मुख्यता प्रधानता है। नैमितिक परिणति को आगे पीछे नही बना सकते है तब पुद्गल की प्रायोगिक क्रिया निमित के ही आधीन है वह आगे पीछे बनावे या नही ? अबुद्धिपूर्वक नैमितिक पर्याय आगे पीछे नहीं होती है किन्तु बुद्धिपूर्वक पर्याय आगे पीछे होती है, यदि न हुवे तब पुरुषार्थ रहा ही नहीं। आगे आप क्या लिखते है वह विचारीये ?

यनुप्रेक्षा की। गाथा अर्थ—जीस जीव ने जीस देश में जास काल मे जिस प्रकार कर जन्म मरण सुख दुःख रोग दारिद्र आदि जैसा सर्वज्ञ देवने देखा है वैसा ही नियम से होगा और वही जीव को वही देश में वही प्रकार से नियम से होती है उनको इन्द्र तथा जिनेन्द्र कोई प्रकार का परिवतन कर नहीं सकते है।

विशेषार्थ-शकाकार—है भगवन्त ? क्रमबद्ध पर्याय मे जो हाने वाला है वही होगा तब पुरुपार्थ करने की वया जरूरत है ?

उत्तर—है भव्य ! संसारि जीवों में क्रमवती और व्यतिरेक दानो पर्याय होती हैं। जन दर्शन कारक पक्ष और ज्ञापक पक्ष दोनों सापेक्षता से स्वोकारते है। वही मम्यक्नय है। कारक पक्ष (कारण कार्य सम्बन्ध) पुरुपाथ बाद का पोषक है और ज्ञापक पक्ष (ज्ञान ज्ञेय सम्बन्ध) पुरुषार्थ बाद की सापेक्षता से ग्रहण करने योग्य होने से उसे सम्यक् नियति बाद कहते हैं। जो जैन दर्शन ने मान्य है। एकान्त नियतिवाद निरपेक्षता का पोषक होने से मिथ्यावाद रूप है जो जैन दर्शन को मान्य नही है।

नोट—शंकाकार का प्रशन का खुला सा हुवा ही नही। क्रमवर्ती पर्याय और व्यतिरेक पर्याय में क्या

है या अक्रम भी होतो है। खुलासा करने की बड़ी जरूरत थी वही हुई नही और केबल वाक्य जाल दिखाया। अबुद्धि पूर्वक राग का अपेक्षा यह गाथा यथार्थ है यह क्रमबद्ध हो पर्याय है जिसमें आत्मा के पुरुषार्थ अकार्यकारी है। किन्तु बुद्धि पूर्वक राग अक्रम है जिसमे आत्मा के पुरुषार्थ कार्यकारी है। इतनाही शक'कार के जबाव है।—कार्य कारण सम्बन्ध में हमेशा कारण की मुख्यता है यदि कारण जीव हो या पुद्गल हो कारण है वही प्रधानता है कार्य तो कारण के आधीन अपनी अवस्था धारण करते है जो अवस्था को नैमित्तिक अवस्था कही जाती है।—आगे ब्रह्मचारी जो महाराज क्या लिखते है वह देखिये ?

६२—पृष्ठ ३६० पक्ति ६ गाथा ३६६-४००

शंकाकार—है भगवन्त ? सर्वज्ञ देव व्यवहार नय से सब द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अवस्था को जानते हैं ऐसा जो कहने में आते है तब निश्चय से सर्वज्ञपना ही रहा नही ?

उत्तर—हे पज्ञ: ! केवली भगवान निजके आत्मिक सुख मे तन्मय होकर जैसे जानते है वैसा ही बाह्य पदार्थ को जानते नही इसी कारण कहते है कि केवली भगवान व्यवहार से जानते है।

मूलगाथा का अर्थ--जिस समय में जिससे जैसा जिसको नियम से होते है वही समय में ऐसा ही उन से होने वाला था ऐसा नियम से सब वस्तुओ को मानना नियतिवाद है। कांटे आदि तीक्षण पदार्थ मै तीक्षणपना किसने किया ? और मृग और पक्षी आदि अनेक प्रकार के (रंग वाले) दिखने मे आते है उसको किसने बनाया ? ऐसे प्रश्न के उत्तर ऐसा देते है कि वह सब के स्वभाव ऐसे है। उसी प्रकार [अन्य कारण बिना] स्वभाव से मानना उसे स्वभाव वादी कहते है।

नोट--यह गाथा को श्री ब्रह्मचारी जी महाराज ज्ञापक पक्ष की गाथा दिखाते है जब आप पृष्ठ ३८० पर ज्ञापक पक्ष का अर्थ ज्ञेय ज्ञापक सम्बन्ध दिखाते हैं ? क्या यह गाथा ज्ञेय ज्ञापक सम्बन्ध की है ? यदि नहीं है तब यह केवल वाक्य जाल है।

६५--पृष्ठ ३६४ पंक्ति १६ गाथा आत्म मीमांसा की है।

अबुद्धि पूर्वापेक्षाया मिष्ठा निष्टं स्वदैवतः।
बुद्धिपूर्व विपेक्षायां मिष्टा निष्टं स्वपौरुषात ।।४०३

अर्थ--जो पुरुष की बुद्धि पूर्वक न हुवे इसी अपेक्षा से जो इष्टा निष्ट कार्य होते है वह कर्म कृत

नोट—देखिये केवली के व्यवहार और निश्चय नय से देखने का स्वरूप दिखाया ? हम भी पर पदार्थ को तन्मय से जानते नहीं है क्योंकि तन्मय एक प्रदेश मे ही होते है। पर पदार्थ तो पर ही है उससे एक प्रदेश का सम्बन्ध कैसे हो जावेगा ? यथार्थ में केवली भगवान अपनी ज्ञान की ज्ञेयाकार रूप पर्याय को जानते है वह निश्चय और पर पदार्थ को जानते है वह कहना व्यवहार उपचार मात्र है।

६३—पृष्ठ ३९० पंक्ति १८ गाथा ३९९-२००

और देखिये क्या लिखते है "सर्व जीव पर पदार्थ को निश्चय से भोगते ही नही है किन्तु निज का रागादिक परिणाम को ही निश्चय से भोगते है उसी प्रकार निश्चय से अरहन्त परमात्मा निज आत्मिक सुख को भोगते है किन्तु पर पदार्थो को भोगते है वह केवल व्यवहार है (देखिये नियमसार गाथा १५६-१६६)

नोट—कहां देखना और कहां भोगना ? प्रश्न देखने का है और जबाब भोगने का दिया जाते है वही वाक्य जाल है ?

६४—पृष्ठ ३६१ पंक्ति ५ गाथा ४०१-४०२ यह दोनों गाथा को मिथ्या नियतिवाद [ज्ञापक पक्ष] का स्वरूप लिखते है।

आत्मा को शुद्ध आत्मा को साक्षात अनुभव होते है उनमें चारित्र मोहनीय कर्म का उदय बाधक नही है।

शंकाकार–हे भगवन्त ! अनादि मिथ्या दृष्टि भव्य आत्मा के पांच प्रकृतियो का उपशम किस कारण से होते है ?

उत्तर–हे भव्य ! "काल लब्ध्याधपेक्षयात दुपशम" काल लब्धि जाति स्मरण ज्ञान, जिन बिम्बदर्शन आदि कारणों से पांच और सात प्रकृतियो का उपशम होते है।......काल लब्धि से ही भव्य शक्ति व्यक्त (प्रगट) होती है और भव्यत्व भाव प्रगट होने से उपशम सम्यक्त्व उत्पन्न होते है।

नोट–शंकाकार अनादि मिथ्यादृष्टि को प्रश्न पूछते है तब अनादि मिथ्यादृष्टि को सात प्रकृति का उपशम कैसे हो जावेगा ? वहां तो पांच ही प्रकृति है ? भव्यत्व भाव प्रकट होने में निमित कारण कौन है ? भव्यत्व भाव तो पारिणामिक भाव है वह निमित्त स्वीकार करते हो नहीं है तब कारण का प्रश्न ही नही है ? क्या भव्य भाव प्रगट और अप्रगट रहते होंगे ? कदापि नही ? वह तो शक्ति रूप अनादि अनन्त है। तो भी भव्यत्व भाव का प्रगट होना लिखना केवल मात्र जाल है। सम्यग्दर्शन का प्रधान कारण केवल

भी भावार्थ में सम्यग्दृष्टि जीव के पुन्य मानते है और मिथ्यादृष्टि पाप मैं ही रहते है वह लीखना केवल वाक्य जाल है। मिथ्यादृष्टि द्रव्य लिगी मुनि नोग्री ग्रेवेयक पुन्य भाव के कारण से ही जाते है। और आगे देखिये--

६८--पृष्ठ ४१२ पंक्ति १२--मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीव कभी जप-तप, व्रत, उपवास, ध्यान, परोपकार आदि भीं करते है उस समय उनकी बाह्य क्रिया प्रगट देखने में आती है किन्तु अंतरंग में मिथ्या अभिप्राय रहने से उनका उपयोग का शुभोपयोग कहते नही इसी कारण मिथ्यात्वी द्रव्य लिगी मुनि को भीं अशुभोपयोगी कहते है।

नोट--मिथ्यात्व अलग गुण की पर्याय है और पुन्य पाप अलग गुण की पर्याय है। पुन्य को पुन्य नहीं कहना क्या वह सम्यग्ज्ञान है। पुन्य तत्व किसे कहोगे ? और पाप तत्व किसे कहोगे ? शान्ति से विचारना चाहिये। मनमानी लिखना यही तो वाक्य जाल है। और आगे देखिये--पृष्ठ ४१४ पंक्ति ६ सम्यग्दृष्टि का अशुद्धोपयोग भी निर्वाण में बाधक नहीं है। देखिये पाप भाव भो निर्वाण में बाधक नही है तब क्या पाप करते करते निर्वाण हो जावेगा ? मोक्ष मार्ग में जहां

विचारका है तो भी तत्त्व विचार वाले जीव सम्यक्त्व की प्राप्ति करेही करे ऐसा नियम नहीं है ॥ दूसरी बात सम्यग्दर्शन को उत्पति में अंतरंग कारण दर्शन मोहनीय कर्म का उपशमादि है या आत्मा के उत्साह है ? कारण कार्य के ज्ञान बिना. लिख देना वही वाक्य जाल है ।

१००–पृष्ठ ४४७ पंक्ति १६ गाथा ४५५ ।

गाथा अर्थ–पुदग्ल विपाकी शरीरनामा नाम कर्म का उदय से मन वचन काय युक्त जीवके कर्मो के ग्रहण करने मे कारण भूत जो शक्ति उनको योग कहते है ।

भावार्थ–संसारी जीव की जो समस्त प्रदेशों में रहने वाली कर्मो के ग्रहण करने में कारण भूत शक्ति है उनको भाव योग करते हैं और वही प्रकार के जीव के प्रदेशों को जो परिस्पदन है उनको द्रव्य योग कहते है ।

नोट–जीव की पर्याय को भाव शब्द का प्रयोग होते है और पुद्गल की पर्याय को द्रव्य शब्द के प्रयोग होते है । जीव के प्रदेशों के परिस्पद को आपने द्रव्य योग कैसे लीखा ? यह नो जीव की पर्याय है । जिस परिस्पदन को आप यहां द्रव्य योग लीखते है । वही

होते ही प्राप्त होतो है उनके पहेले उनकी अस्तित्व भी नही है।

१०३—पृष्ठ ४६३ पंक्ति १६ गाथा ४६७ सम्यक्त्व के दश भेद

विशेषार्थ—सराग सम्यक्त्व और वीतराग सम्यक्त्व में ज्ञान चेतना अभिनाभावी है यदि वह उपयोगात्मक (अनुभव रूप) होते भो हो न भो हो किन्तु लब्धि रूप अवश्य मेव होय है उनको सम व्याप्ति और विषम व्याप्ति कहते है।

नोट—ज्ञान चेतना ब्रह्मचारी जी ज्ञान गुण की पर्याय मानते है। यदि ज्ञान चेतना ज्ञान गुण की पर्याय है तो ज्ञान गुण को कर्म और कर्म फल चेतना पर्याय कैसे होती होगी ? यह दोनों पर्याय बन्ध के कारण है और ज्ञान के विकार से बन्ध होते हो नही ? यदि ज्ञान चेतना चारित्र गुण की पर्याय मानी जावे तो चारित्र गुण मे लब्धि और उपयोग के भेद होते ही नही है ? लब्धि और उपयोग के भेद ज्ञान दर्शन चेतना में ही होते हैं। जिससे ज्ञान चेतना को उपयोगात्मक और लब्धि रूप कहना नितांत भूल है यही वाक्य जाल है।

मिथ्यात्वी, अज्ञानी और अचारित्रवान पुद्गल कर्म ही करते है तो आत्मा के सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

उत्तर—है भव्य ? मिथ्यात्व नाम की कर्म प्रकृति आत्मा को मिथ्यादृष्टि करती नहीं है क्योंकि आत्मा परिणमन शील है सर्वथा कुटस्थ नहीं है।

नोट—मूल गाथा से विपरीत भावार्थ क्यों लीखा जाते है ? यदि आत्मा को मिथ्यात्व कर्म मिथ्यादृष्टि नही करते हैं तो मिथ्यादृष्टि बनने का कारण कौन है ? क्या आत्मा स्वयं कारण है ? यदि आत्मा स्वयं कारण बन जावे तो शुद्ध बने ही कैसे ? क्योंकि आत्मा त्रीकाल वस्तु है त्रीकाल का नाश हुवे नही और मिथ्यात्व भाव कभी छुटे ही नही। जिससे सिद्ध होते हैं कि विकार के कारण परद्रव्य ही है ओर वही मिथ्यात्व नाम के कर्म हैं ? मूल गाथा से गलत टीका लिखना यही वाक्य जाल है।

१०७—पृष्ठ ५७५ पंक्ति १४ गाथा ५१० समयसार गाथा १६१

विशेषार्थ—जीव पर पदार्थ का आश्रय दो प्रकार से करते हैं। एक अज्ञानवश जो दर्शन मोहनीय के उदय रूप होय है दूसरे अस्थिरतावश वह चारित्र

पर प्रत्यय ही है। मनमानी लिखना उसी का नाम वाक्य जाल है।

१०६–पृष्ठ ५७८ पंक्ति ६ गाथा ५१०-५११-५१२ समयसार गाथा १६१-१६२-१६३ विशेषार्थ-अन्तरात्मा निज के आत्मा को यथार्थ जानते है और अपने शरीर से भिन्न अनुभव करते है तो भी बहिरात्मावस्था के अनादि काल के संस्कार के (पूर्वकालीन विभ्रम भाव) जागृत हो जाने के कारण कभी कभी उनके बाह्य पदार्थ में एकत्व की बुद्धि भ्रम हो जाने से अन्तरात्मा सम्यग्दृष्टि को क्षयोपशम लब्धि रूप ज्ञान चेतना की साथ कदाचित कर्म चेतना और कर्म फल चेतना का भो सद्भाव मानने में आते है।

नोट–१ प्रथम सम्यग्दृष्टि को पूर्व कालीन भ्रम जागृत हो जावे तो सम्यक्त्व कैसे रहेगे? दूसरी बात वर्तमान पर्याय में भूत काल की पर्याय का प्राग भाव है। तीसरी बात कर्म चेतना और कर्म फल चेतना तो बुद्धि पूर्वक छट्ठा गुणस्थान तक रहती है तव अव्रती सम्यग्दृष्टि को कदाचित हो जाना अत्यन्त गलत बात है। चोथी बात ज्ञान चेतना ज्ञान गुण की क्षयोपशम लब्धि नही है वह तो चारित्र गुण की अंश में शुद्धता है। पांचवो बात कर्म चेतना और कर्म फल चेतना

बात सम्यक्त्व प्रकृति सातवे गुणस्थान से आगे जाने ही नही देती तब वह साधक कैसे ? पांचवी बात सम्यक्त्व प्रकृति के सद्भाव में क्षायिक भाव नहीं होते है किन्तु उनके नाश से तब वह साधक कैसे रही ? यही सब वाक्य जाल है। संभाल से रहना अन्यथा अपना नाश का ही कारण हो जावेगा ? और विशेषता जरा देखिये ?

पृष्ठ ५३६ पक्ति १५ वही गाथा विशेषार्थ पर- मार्थ से तुही अपना उपकारक और अनुपकारक हो ऐसा अज्ञानीयो पर आचार्य दया दिखायी है।

नोट—क्या दश प्राण जीव को उपकार करते नहीं वह बात गलत है उपचार है ? यदि सब जीव अपने ही आप अपने को उपकारक है तब निगोदिया जीव वहां सम्यग्दर्शन की प्राप्ति क्यों नहीं कर लेते ? जीस जीव का द्रव्यमन बिगड गया है वह जीव अपना कल्याण कभी कर सकते है ? कदापि नहीं ? तो भी गाथा से विपरीत भावार्थ लिखना यही वाक्य जाल है

यही बात प्रवचनसार ग्रन्थ की गाथा १४७ और पचास्तिकाय ग्रन्थ की गाथा ३० में भी लिखा है।

जो चार प्राण से जीता है पूर्व जीता था जीवेगा। वही जीव है और प्राण इन्द्रिय आयुबल उछ्वास है।

भागानुसार से खीरती है किन्तु जैसा बाह्य निमित्त होगा उसी का ही उदय बोला जावेगा यद्यपि अन्य कषाय की वर्गणा भी खीर रही है।

नोट–निगोदिया जीव को बाह्य निमित्त मिलते ही नही वहां चार कषाय के उदय अनुकुल उस जीव के परिणाम होते है या नहीं ? यदि होते हैं तब वहां बाह्य निमित्त का क्या प्रयोजन है ? अपने को भी निद्रावस्था मे बाह्य निमित्त नही है वहाँ भी मौहनीय उदय अनुसार कर्म का वन्ध होते है या नही ? यदि होते है तब वाह्य निमित्त की वहां क्या जरूरत है। बाह्य निमित्त बिना उदय न बोला जावे वही वाक्य जाल है। देखिये क्या दृष्टाँत महाशय दे रहे है ?

पृष्ठ ५६१ पंक्ति १४ दृष्टाँत–जैसे कोई मनुष्य को क्रोध कषाय के कर्म की वर्गणा नियमित ३० मिनिट तक खीर रही है ,१५ मिनिट तक उस जीव को कोई निमित्त क्रोध करने का न मिला वह जीव लोभ की ओर फँसा हुवा है तब तक क्रोध कर्म की वर्गणा बिना फल दिये खीर रही है और १५ मिनिट बाद उसे क्रोध करने का निमित्त मिल गये तब वह क्रोध कर्म उसे फल देने लगते है बाद में शान्त हो गये इतने मे पाँच मिनिट लग गई तब बीस मिनिट से

नोट—सनतकुमार मुनिराज को तीव्र रोग होते हुवे भी वह धर्म कार्य करते थे ? गजकुमार मुनिराज पांडवादि मुनिराज को तीव्र असाता कर्म का उदय होते हुवे भी उसने वीतरागता प्रगट करली । ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को तीव्र पुन्य का उदय है और परिणाम बिगाड़ कर सातवी नर्क में चला गया वहां तीव्र पुन्य का उदय क्या करेगा ? मनमानी बातै लीखना वही वाक्य जाल है ।

११४—पृष्ठ ६०५ पंक्ति २० गाथा ५१५ सम्यक्त्व के पचीस मल दोष

मूल गाथा अर्थ—आठ मद सम्यक्त्व के आठ दोष छंह अनायतन तीन मूठता वह पचीस सम्यक्त्व के दोष है उनसे सम्यक्त्व मलीन होते है ।

भावार्थ—आठ मद पुद्गलाश्रित होने से सम्यक्त्व नाम के आत्म स्वभाव मलीन करता रहेगे सो दोष है

नोट—आठ मद रूप आत्मिक भाव पुद्ग्लाश्रित है या आत्याश्रित है ? यदि आठ मद पुद्ग्लाश्रित है तव जोव उनका त्याग कैसे कर सकते है ? आठ मद जीव की प॰यि है जीव स्वयं उनका स्वामो है जिससे जीव वह भाव का त्याग कर देते है तो भी उनको पुद्ग्ला-श्रित लोखना वहा दिखाते है कि आपको आत्म

एक नय का पक्ष करते नहीं किन्तु सर्वथा मध्यस्थ भाव रखते हैं।

भावार्थ—बारबार आत्म तत्व का विचार चिन्तवन करने से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाती है।

शंकाकार—हे भगवन्त ? तत्त्व विचार में विशेष उपयोग न लगे तब क्या करना ?

उत्तर—हे शिष्य ! पूजनादि शुभ कार्यों में उपयोग लगाना, भली वासना और अच्छे निमित से कर्म का स्थिति अनुभाग घट जाते हैं जिससे सम्यक्त्वादि की प्राप्ति होती है इसलिये रागादि मंद करना यथा शक्ति तपादि साधना करनी व्रत नियमादि की प्रतिज्ञा करनी जिससे अव्रत भाव का बन्ध रूक जायगा।

नोट—जब तक मिथ्यात्व का बन्ध न रुके उनसे पहले अव्रत भाव का बन्ध कभी भी रुक सकते नहीं यही मार्ग है, तो भो शुभ किया शुभ कार्य करने का निषेध नही, किन्तु उसे मुझको अव्रत भाव के बन्ध रुक जावेगे यही मान्यता आगम विपरीत है। तो भी अव्रत भाव का बन्ध रूक जावेगा यह लीखना आगम विपरीत वाक्य है। यही वाक्य को वाक्य जाल कही जाती है।—

११७—पृष्ठ ६४२ पंक्ति ४ गाथा ५२५ सप्ततत्त्व का स्वरूप।

तत्त्वार्थ श्रद्धान सामान्य रूप (शक्ति अवस्था रूप) और विशेप रूप (व्यक्त अवस्थारूप) निरंतर होय है।

नोट–प्रथम सम्यग्दर्शन लब्धि और उपयोग रूप रहते ही नही है। जो श्रीमान ब्रह्मचारी जी महाराज मानते है। लब्धि और उपयोग ज्ञान और दर्शन मे हो भेद पड़ते है अन्य गुण में नही। दूसरीं बात ओदयिक भाव अपने ज्ञान में आते ही नही तब उनका प्रश्न ही नहीं है। तीसरी बात जो बाह्य पदार्थो में सम्यग्दृष्टि मेरा मेरा अयवा इष्टानिष्ट करते है वह उदीरणा है किन्तु उदय नहीं है और ऐसे भाव भूमिका रूप रहते ही है क्योंकि वह राग की पर्याय है। चौथी बात चारित्र मोहनीय कर्म के उदय में सम्यग्दर्शन रूप शक्ति शक्ति रूप कैसे रह जावेगी ? वह तो प्रगट है और अपना सम्यग्श्रद्धान रूप अंतरग मे परिणमन करती है। पांचवी बात जब सम्यग्दृष्टि अपना और कर्म का विचार करते है तब क्या सम्यग्दर्शन रूप शक्ति प्रगट हो जाती है ? यह कहना भी यथार्थ नही है। उपयोग वह ज्ञान को पर्याय है। उपयोग बदलते रहते है किन्तु श्रद्धा जो प्रगट हुई है वह कहाँ चली जावेगी। अर्थात ब्रह्मचारो जी महाराज ने ज्ञान और श्रद्धा दोनो को एक हो वनादी यही वाक्य जाल है।

भावार्थ–शंकाकार-है भगवन्त ! जिस समय में सम्यग्दृष्टि जीव विशेष कषाय की तीव्रता संयुक्त होते है उसी समय उसे तत्त्व का श्रद्धान्न रहते नहीं है जिससे आपने सम्यक्त्व का जो लक्षण दिखाया है उनमें अव्याप्ति नाम के दूषण आ जाते है ?

उत्तर–है प्राज्ञ ! जीव में श्रद्धान रूप और परिणमन रूप दो भाव होते है। उनमें श्रद्धान सम्यक्त्व का लक्षण है और परिणमन चारित्र के लक्षण है। . . . . ज्ञानी जीव उदय में आवेल कर्म के परिपाक को भोगते है, उस भाव को अपने श्रद्धान मे औदयिक के विपाक अपने स्वरूप से भिन्न समजते है तो भी इष्ट अनिष्ट सयाग में हर्ष विषाद करते है, वह औदयिक सम्बन्ध मे बाह्य मे मेरा मेरा भी करते हैं और अपनी प्रतिती का वारम्बार स्मरण करते नही है, क्योकि वह प्रतिती कर्म के उदय शक्ति रूप रहतीं है किन्तु जब वह कर्म और अपने निज स्वरूप का विचार करते है तब वह उस समय मे अंतरंग प्रतितो को प्रगट करते है। ज्ञानी जीव कर्म के उदय को यद्यपि पराधीन दुख जानते है किन्तु अपनी शुद्धोपयोग शक्ति की हीनता के कारण पूर्व बध कर्म बश लाचारी से कर्म के औदयिक भावों मे प्रवृती करता है उसी प्रकार सम्यक्त्वदृष्टि जीव के

११९–पृष्ठ ६४६ पंक्ति १० गाथा ५२६ समय-सार गाथा १३।

भावार्थ–आस्रव का अभाव होने से संवर होते है और बन्ध के अभाव से निर्जरा होती है।

नोट–आस्रव तत्त्व में बन्ध तत्व का अभाव है। आस्रव के कारण मन वचन काय योग है और वन्ध के कारण मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और क्रिया है। मन वचन काम के जब तक सद्‌भाव है तब तक आस्रव रहते है और मिथ्यात्व भाव छुट जान से ४१ प्रकृति का बन्ध रूक जाते है वही संवर भाव है। तब विचार किजिये बन्ध रुकने से संवर होते है या आस्रव रोकने से संवर होते है ? दूसरी बात पांचवे गुणस्थान मे ५१ प्रकृति का संवर हुवा है वहाँ पहली प्रतिमा से लेकर ११ वो प्रतिमा तक प्रत्याख्यान कषाय के बन्ध पड़ते है तब क्या वहाँ पहली प्रतिमा से ११ भी प्रतिमा धारी जाव को समान निर्जरा है या अन्तर है ? तब बन्ध को रुक जाना निर्जरा तत्त्व कहना कहां तक उचित है ? बन्ध समान प्रकृति के होते हुवे भी निर्जरा तत्त्व में अन्तर है। यह भेद ब्रह्मचारी जी महाराज की दृष्टि में नहीं आया जिससे उसनें लिख दिया कि आस्रव रुकने से संवर होते हैं और बन्ध रुकनें से

११८–पृष्ठ ६४३ पंक्ति १५ गाथा ५२५ ।

भावार्थ–शंकाकार–है भगवन्त ! द्रव्य लिगो मुनि राज के तपश्चरण बहुत होते है और "तपसा निर्जराच" तत्त्वार्थं सूत्र में कहया है तब उनको निर्जरा होती है या नही ?

उत्तर–है भद्र ? शास्त्र में इच्छानिरोधतपः। इच्छा का निरोध तप कहा है। यदि वह इच्छा शुभ रूप हो या अशुभ रूप हो किन्तु इच्छा मात्र के निरोध को तप कहा है।

नोट–देखिये यहाँ श्रीमान ब्रह्मचारी महाराज की ऐसी धारणा है कि समस्त इच्छा का निरोध होने से निर्जरा होती है ? जब समस्त इच्छा छूट जावे तब तो वीतराग हो गये वहाँ तप की क्या जरूरत है ? यथार्थ मे यह उसका जवाब होना चाहिये कि जब तक अनन्तानुबन्धी कषाय का अभाव रूप संवर नही होते है, तब तक निर्जरा प्रारम्भ होती ही नही है। द्रव्य लिगी मुनिराज के अनन्तानुबन्धी कषाय के अभाव नही हुवा है जिससे उनके तप से निर्जरा तत्त्व नहीं होते है किन्तु केवल पुन्य तत्त्व होते हैं। यह जवाव न देकर मनमाना जवाब देना उसी का नाम वाक्य जाल है।

विकल्प होते है, किन्तु श्रद्धान में तो सर्वत्र परस्पर सापेक्षपना जाने ऐसे तत्व विचार करते करते मिथ्यात्व कर्म का उपशमादि हो जाते है।

नोट—श्रद्धान अभेद का ही होते है जिनमें गुण गुणी के भेद नहो किन्तु सापेक्षपना श्रद्धान मे होते ही नही वह तो ज्ञान की पर्याय है। ज्ञान और श्रद्धान को खोचड़ी बना देना ही बडी भूल है उसे ही वाक्य जाल कहते है। एक एक गुण के स्वतन्त्र परिणमन दिखाने से भूल कभी नही हो सकती है यही भेद ज्ञान के प्रधान कारण है।

१२२–पृष्ठ ६४६ पक्ति १० गाथा ५२६ समयसार गाथा १३ "जैसे सत्तावन प्रकार के आस्रव बन्ध के कारण है उनसे छुटना सत्तावन भेद सवर के जानने से निर्जरा होती है अर्थात बन्धा हुवा आत्मा छुट सकते है।

नोट—आस्रव के कारण बध के कारण कैसे हो जावे ? आस्रव तत्व अलग है और बन्ध तत्व लग है। आस्रव के कारण मन वचन काय योग है और बन्ध के कारण मिथ्यात्व अव्रत प्रमाद कषायादि है। और संवर तत्व केवल जानने से निर्जरा कैसे हो जावेगी ?

निर्जरा होती है वह लीखना केवल वाक्ल जाल है।

१२० पृष्ठ ६४७ पंक्ति १७ गाथा ५२६ समय-सार गाथा १३ मोक्ष तत्त्व वही अर्हन्त सिद्ध के लक्षण है उससे सच्चा देब का श्रद्धान हुवा संवर निर्जरा मोक्ष के साधन है उनके धारक मुनिराज है वह सच्चा गुरु का श्रद्धान हुवा।

नोट—मोक्ष तत्व अर्हन्त सिद्ध का लक्षण कैसे हो जावे ? अर्हन्त को अभी आस्रव और बन्ध भी लेश्या का है वहाँ मोक्ष तत्व कैसे हो जावे ? यथार्थ में मोक्ष तत्व तो चौदवे गुणस्थान के अन्त के समय मे हो होने है। अर्हन्त सिद्ध का स्वरूप निम्न प्रकार नियमसार ग्रन्थ मे दिखाया है।

चार घाति कर्म विहीन और चौतीस अतिशय युक्त जे केवल ज्ञानादि परमगुण युक्त श्री अर्हन्त है। जो अष्ट कर्म विनिष्ट अष्ट महागुणे संयुक्त जे शाश्वत परम और लोकाग्र विराजमान श्री सिद्ध है।

सब जीव का लक्षण जोव तत्त्व है अर्थात चंतन्य है।

१२१—पृष्ठ ६४८ पक्ति २ गाथा ५२६ समयसार गाथा १३

भावार्थ—उसी प्रकार ज्ञान में अनेक प्रकार के

आप संवर मानते हो तब संवर निर्जरा तत्व एक ही हो गये उनमें अन्तर कहाँ रहा ? बन्ध होने के हेतु को आस्रव मानोगे तब बन्ध के हेतु वह आस्रव के हेतु कैसे हो जावे ? बन्ध तत्व अलग है और आस्रव तत्व अलग है। दोनों को एक बना देना वहो तो तत्व में भूल है, जैसा का तैसा कहा जाना ? संसार अवस्था के अभाव का नाम मोक्ष कहोगे तब संसार तो राग द्वेष मोह के नाम है। केवली को उपचार से भाव मोक्ष माना जाते है तो क्या वहां मोक्ष तत्व हो जावेगा ? कर्मो का अत्यन्त अभाव अर्थात आत्म गुणो की सम्पूर्ण शुद्धता उसी का नाम मोक्ष तत्व है। अलग अलग जैसा का तैसा न दिखाना और खीचड़ी बना देना उसी का नाम तो वाक्य जाल है।

१२४–पृष्ठ ६५० पंक्ति २२ गाथा ५२६

सारांश–शुद्ध रूप से प्रतिष्टापित जो आत्मा है जिसका लक्षण आत्म ख्याति है उनकी अनुभूति होती है अर्थात आत्मख्याति ही नियम से संवर निर्जरा और मोक्ष के कारण हैं।

नोट–केवल सम्यग्दर्शन मोक्ष के कारण नहीं है किन्तु आत्म शान्ति के भी कारण नहीं है। सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान में ही हो जाते हैं वहां तीन कषाय से

जानना ज्ञान का कार्य है। मात्र ज्ञान से संवर निर्जरा कैसे हो जावेगी ?

१२३-६५० पंक्ति ४ गाथा ५२६ समयसार गाथा १३

सारांश-ज्ञानादि आत्मा के स्वरूप है और पर जे रागादि वर्णादि अजीव के स्वरूप है। संवर रागादि रहित आत्म परिणाम है। निर्जरा जो भावी कर्म वन्ध के कारण भाव कर्म था उनका निर्जरना वह निर्जरा है। बंध रागादि के फल वह बन्ध है। आस्रव बध होने के हेतु के आना वह आस्रव है। पुण्य-मद रागादि को पूण्य कहते है। पाप-तीव्र रागादि को पाप कहते है। मोक्ष-संसार अवस्था का अभाव वह मोक्ष है। आस्रव (पाप-पुण्य) से बन्ध होता है और संवर निर्जरा से मोक्ष होता है ऐसे यथार्थ श्रद्धान करना वह सम्यक्त्व है।

नोट-वर्णादि और रागादि अजीव तत्व कैसे हो जावे ? रागादि तो बन्ध तत्व में जावेगा या अजोव तत्व मे ? अजीव तत्व और बन्ध तत्व को एक बना दिया ? यही तत्व में भूल रह गयी। भाव कर्म का निर्जरना वह निर्जरा तत्व कहोगे तब भाव कर्म वही तो रागादि है उनसे अलग रागादि नही है उनको

उन्हें भावासृव कहते है। वही योग गुण के कम्पन निमित्त है और कर्म वर्गणाओं के आत्म प्रदेश के नजदीक आना वह नैमित्तिक है अर्थात द्रव्य आसृब हैं। जैसा सम्बन्ध है वैसा ही दिखाना चाहिए। मनमानी लिखना यही तो वाक्य जाल है।

१२६–पृष्ठा ६५४ पक्ति १० गाथा ५२६ समयसार गाथा १३

विशेषार्थ–शुभाशुभ परिणाम रूप पुण्य पाप भावासृव, भावबन्ध, भाव सवर, भाव निर्जरा, और भाव मोक्ष वह केवल जीव के विकार है और पुण्य पाप नाम के शुभाशुभ परमाणु द्रव्यासृव, द्रव्य वन्ध, द्रव्य निर्जरा और द्रव्य मोक्ष वह केवल अजीव रूप विकार है। जीवादि नव पदार्थों को जीव द्रव्य की पर्याय कहने में आती है उसी प्रकार अजीव द्रव्य की भी पर्याय कहने मे आता है।

नोट–पुण्य भाव, पाप भाव, भावासृव भाव बन्ध, जीवके विकार है किन्तु भाव सवर भाव, निर्जरा, भाव मोक्ष वह जीव के विकार कैसे हो सकते है? यह तो जीव को स्वभाव पर्याय है। उसी प्रकार द्रव्य पुण्य, द्रव्य पाप, द्रव्य आसृव, द्रव्य बन्ध, वह पुद्गल के

आत्मा दुखी ही है। यदि सम्यग्दर्शन से ही सवर, निर्जरा, मोक्ष हो जावे तब सब सर्वार्थ सिद्धि के देव सम्यग्दृष्टि है तो भा वहा पचम गुणस्थान क्यों नही हो जाते ? माक्ष तो दूसरा बात है। साक्षात शान्ति के कारण वीतराग भाव है और मोक्ष के कारण कर्मो का अभाव ही है।

१२५–पृष्ठ ६५२ पक्ति १२ गाथा ५२६ समय-सार गाथा १३

निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध–पूर्वार्जित कर्मोदय से जब आत्म प्रदेशो के शुभाशुभ रूप परिस्पन्द होते है तब पूर्वार्जित कर्म आस्रवक कहने मे आते हैं (अर्थात निमित्त) और शुभाशुभ परिणाम आस्रव कहने मे (अर्थात नैमित्तिक) शुभाशुभ परिणाम जब नये कर्म परमाणुओ के आस्रव करते हैं तब शुभाशुभ परिणाम आस्रवक कहने मे आते है (निमित्त) और पुद्गल पर-माणु आस्रव कहने मे आते है (नैमित्तिक)

नोट–केवली परमात्मा को शुभाशुभ परिणाम नही है और वहाँ द्रव्य एव भावआस्रव दोनो हाते है जिस से यह निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध दिखाना गलत है। यथार्थ मे मन वचन काय का कम्पन निमित है और योग गुण की कम्पन अवस्था नैमितिक अवस्था है

नही वह लीखना केवल वाक्य जाल है। अप्रत्याख्यान कषाय के सद्भाव में ऐसा भाव हो सकते हैं। और विशेषता देखिये ?

१२८—पृष्ठ ६६७ पक्ति १६ गाथा ५२८

भावार्थ—सम्यग्दर्शन होने से ज्ञान सम्यक ज्ञान हो जाते है जिससे अव्रत सम्यग्दृष्टि में बेर भाव होते नहीं।

नोट—बेर के कारण सम्यक ज्ञान नहीं है किन्तु राग भाव है। अप्रत्याख्यान कषाय के सद्भाव में सकल्पि हिंसा के भी भाव हो जाते है तब विरोधोनी हिसा के वहां प्रश्न भी कहाँ है भूमिका के अनुसार राग अपने कार्य करते है तो भी बेर भाव नहीं होते वह लीखना केवल वाक्य जाल है। और देखिये ?

१२९—पृष्ठ ६६७ पंक्ति १० गाथा ५२८

भावार्थ—अब्रत सम्यग्दृष्टि आत्मा शत्रुता छोड कर सब जीवों में शल्य रहित होता है उसे अनुकम्पा कहते है सब जीब प्रत्ये दशा भाव होने के कारण दर्शन मोहनीय कर्म के उदय के अभाव है जिससे उन को कोई दूस्मन मालुम नही होते।

नोट—दर्शन मोहनीय कर्म के उदय के अभाब से मिथ्यात्व भाव नहीं होते किन्तु दया रहित या दया

नोट–स्त्री पुत्रादि में प्रेम तो संसारी सब जीव करते है क्या वह वात्सल्य अंग हो जावेगे ? वह विषानुराग है यह दोनों राग समान कैसे हो जावेगे ? तो भी स्त्री पुत्रादि प्रत्येके राग को वात्सल्य अंग में लीखना वह वाक्य जाल है ।–आगे क्या लिखते है वह जरा देखिये ?

पृष्ठ ६७१ पंक्ति १ गाथा ५२६

विशेषार्थ–सम्यक्त्व के विनाश के पांच कारण है । १ ज्ञान के अभिमान । २ बुद्धि की हिनता । ३ निर्दय वचन के भाषण क्रोधी परिणाम और प्रमोद ।

नोट–बुद्धि की हिनता सम्यक्त्व के नाश के कारण कैसे हो जावे ? बुद्धि बढ़ना और हीन होना ज्ञानावरण कर्म के आधीन है वह मिथ्यात्व के कारण नहीं है ? देखिये शीव मूर्ति मुनिराज ? बुद्धि हीन होते भी केवल ज्ञान की प्राप्ति करलीं ? दूसरो बात कठोर वचन वह चारित्र के घातत है किन्तु उनसे सम्यक्त्व के नाश कैसे हो जावे ? सत्याणु व्रत पंचम गुणस्थान में ही होते है अव्रती सम्यग्दृष्टि में यह बात कैसे आवेगी ? भरत महाराज ने चक्र को हुकम किया कि जाव बाहुबली के शीश काट कर लाव ? क्या यह कठोर वचन नही है ? यदि है तो क्या भरत का

सहित वह चारित्र गुण की पर्याय है। मंद कषाय में दया के भाव होते है। चारित्र मोहनीय कर्म के सद्-भाव मे दया और अदया के भाव होते है। अनुकम्पा प्राणी मात्र को दुखी देख कर दुख से छोडने के भाव को अनुकम्पा कहते है पंचास्तिकाय ग्रन्थ मे गाथा १३७ में अनुकम्पा किसे कहते है वहा लिखा है कि

दु खित तृषित वा क्षुधित देखी दुख होना मन विषें।
करुणा से वर्ते जेह अनुकम्पा सहित वह जीव है।

शत्रुता छोड देना वह अनुकम्पा नही है। वह तो सरल परिणाम है। सरल परिणाम होना और बात है और अनुकम्पा होना और बात। दुखी जीव को देखे विना अनुकम्पा कैसे हो सकती है ? तो भी मनमानी बात लिखना उसे ही वाक्य जाल कहते है।

१३०–पृष्ठ ६६६ पक्ति १३ गाथा ५२६

मूलगाथा अर्थ–सम्यग्दर्शन हुवा बाद सवेग, निर्वेग, निंदा, गर्हा, उपशम, भक्ति, वात्सल्य और अनुकम्पा यह अष्ट गुण उत्पन्न होते है।

भावार्थ–वात्सल्य–निश्चय से अपने आत्मा मे प्रेम करना और व्यवहार से सहधर्मी बन्धु से स्त्री पुत्रादि से गौवत्स समान प्रेम करना उनकी सेवा करना।

वना कह सकते हो किन्तु ज्ञान को प्रभावना कहना केवल वाक्य जाल है। और आगे जरा देखिये—

१३२—पृष्ठ ६७३ पक्ति ४ गाथा ५३० सम्यक्त्व के अष्ठ गुण—सम्यग्दृष्टि के अष्ट गुण उनके प्रतिपक्षो दोषों से जो कर्मबन्ध होते थे अब वह बन्ध होते ही नही। और यह अष्ठ गुण के सद्भाव से चारित्र मोहनीय के उदय रूप शंकादि प्रवर्ते है तो भी उनका निर्जरा हो जाती है। सम्यग्दर्शन के प्रादूर्भाव मे जितने गुण प्रगट होते है वह निर्जरा के कारण जानना।

नोट—सम्यक्त्व के कारण से ४१ प्रकृति के बन्ध रुक जाते है और तीन कषाय के बन्ध समय समय में पडते है तो भी बन्धन नही पड़ते वह कहना केवल वाक्य जाल है। अष्ठ गुण से चारित्र मोहनीय कर्म की निर्जरा कैसे हो जावेगी ? अव्रत सम्यग्दृष्टि बुद्धि पूर्वक राग के त्याग करहो सकते नही तब वहां निर्जरा कैसे हो जावेगी ? क्या निर्जरा ! बिना राग छोड़े आप से आप हो जावेगी ? यह सब सम्यग्दर्शन की महिमा दिखाने के लिये केवल गाना गाया जाते हैं, ऐसा वस्तु के स्वरूप नही है। और जरा विशेष देखिये !

१३३—पृष्ठ ६७४ पक्ति १८ गाथा ५३० सम्यंक्त्व के अष्ठ गुण—

सम्यग्दर्शन नाश हो जावेगे ? अव्रत सम्यग्दृष्टि की अप्रत्याख्यान रूप क्रोध है वहां प्रमाद भी है यह सब चारित्र के दोष है किन्तु उनसे सम्यक्त्व का नाश हो जाना कहना केवल वाक्य जाल है। पद के अनुसार क्रोधादि प्रमाद आदि रहते है वह चारित्र में दोष है। किन्तु उनसे सम्यक्त्व नाश हो जावे क्या ऐसा सम्यग्दर्शन है ?

१३१–पृष्ठ ६७३ पंक्ति १ गाथा ५३० सम्यग्दृष्टि के अष्ट अंग के स्वरूप

भावार्थ–व्यवहार मोक्ष मार्ग को अनेक उपाय से उद्योत करे वह ज्ञानी के प्रभावना अंग है और निश्चय से ज्ञान गुण को प्रकासित करे उसे प्रभावना गुण कहते है।

नोट–ज्ञान गुण के प्रशासित करना आत्म के पुरुषार्थ के आधीन नहीं है वह तो ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम के आधीन है। मिथ्यादृष्टि है और तीन ज्ञान है सम्यग्दृष्टि है दो ज्ञान है क्या वह अपने आधीन है। सम्यग्दृष्टि के तीन ज्ञान है और मुनिराज है उनके केवल दो ही हीन ज्ञान है क्या वह उनके आधीन है। आत्मा के पुरुपार्थ श्रद्धा और चारित्र में ही हो सकते है चारित्र की बढ़वारी करना उसे प्रभा-

यदि अपने परिणाम के आप स्वामी नही है तो निन्दा गर्हा क्यों करते है ? केवल गलत गाना गाने से क्या रागद्वेष आपसे आप छुट जावेगा ? कभी नही। बुद्धि पूर्वक राग का आत्मा छट्ठा गुण स्थान तक स्वामी है। ऐसा न मानकर अदवा तदवा मानना लिखना केवल वाक्य जाल है।

१३४—पृष्ठ ६७६ पंक्ति ७ गाथा ५३१ भावार्थ स्वानुभूति की दो अवस्था है एक क्षयोपशम ज्ञान (लब्धि) रुप और दूसरा उपयोगात्मक ज्ञान है। क्षयोपशम ज्ञान रुप (लब्धि रुप) सदा रहता है जिससे क्षयोपशमरुप स्वानुभूति की साथ सम्यक्त्व की सम व्याप्ति है और क्षयोपशम स्वानुभूति की साथ सम्यक्त्व होते ही है इसीलिये उनका अविनाभाव सम्बन्ध हैं। शुद्ध स्वानुभूति शुद्ध निश्चय नय स्वरुप है अर्थात उपयोगात्मक स्वानुभूति के काल मे अवश्य सम्यग्दर्शन के उद्भूतिक बोध हो जाते है।

नोट—स्वानुभूति दो प्रकार की मानी है यही भूल है। स्वानुभूति ज्ञान गुण की पर्याय नही है किन्तु चारित्र गुण की पर्याय है। अनन्तानुबन्धी कषाय के अभाव का नाम ही स्वानुभूति है। उनमे लब्धि और उपयोग के भेद रहते हो नही। यदि ज्ञान पर पदार्थ को जानते

उनको उपयोगात्मक स्वानुभूति होय है और चतुर्थादि सवस्त्रधारी के सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाय तो उने लब्धि रुप होय है।

नोट—देखिये प्रथम लिखते है कि स्वानुभूति के साथ सम्यग्दर्शन अवश्य होय है और दूसरो बात साथो साथ लिखते है कि उपयोगात्मक स्वानुभूति समय सम्यग्दर्शन की साथ विषम व्याप्ति है। यह परस्पर विरोध कथन है। यहाँ अभिप्राय यह है कि जैसे जसे गुणस्थान बढ़ते है वैसे वैसे अनुभूति बढ़ती है किन्तु ज्ञान का उघाड विशेष हुवे अथवा न भी हुवे यह विषम व्याप्ति है। चतुर्थ पंचम गुणस्थान में स्वानुभूति लब्धि रुप रहती है अर्थात अनुभव नही होते है वह भी वाक्य जाल है क्योकि जब अनन्तानुबन्धी कषाय और अप्रत्याख्यान कषाय चली जाती है तो उतने अंश मे आत्मा में शान्ति अवश्य मिलनी ही चाहिये ? यदि शान्ति न मिली तो कषाय के अभाव ने फल क्या दिया ? परमार्थ में स्वानुभूति चारित्र गुण की पर्याय है वह न मानने से ही यह सब भूल हो जाती है। ज्ञान स्व को देखे या पर को देखे किन्तु चारित्र गुण अपना कार्य करते ही है चारित्र में लब्धि और उपयोग के

है तब क्या आत्म शान्ति हमारी चलो जावेगो ? कभी नही ? वह तो नित्य अपना कार्य करतो है। निद्रा मे भी शान्ति है वह शान्ति का अभाव निद्रा में भी नही चला जाते है। निद्रावस्था में भी अनन्तानुबन्धी का अभाव है। वही हमारी शान्ति को ही स्वानुभुति कहो चारित्र कहो सुख कहो वहो एकार्थ है। यही न जानने से स्वानुभूति का दो भेद पाड दिया वही वाक्य ज॰ल है। और विशेष देखिये–

१३५–पृष्ठ ६७६ पक्ति १५ गाथा ५३१ विवेचन उपयोगात्मक स्वानुभूति के समय अवश्य सम्यग्दर्शन हाते है क्योकि सम्यक्त्व बिना स्वानुभूति नही हो सकती है जिस लिये उपयोगात्मक स्वानुभूति समय सम्यग्दर्शन की साथ विषम व्याप्ति है। क्योकि उपयाग आत्मक सातवे गुण स्थान से आगे के गुण स्थान मे होते है किन्तु उससे पहले गुणस्थान में लब्धि रुप होती है। सम्यग्दर्शन होने से शुद्धात्मा का उपयोगात्मक अनुभव हुवे अथवा न भो हुवे किन्तु सम्यग्दर्शन होने से लब्धि रुप अवश्य होय है उसका यह कारण है कि केई जीव अनन्तानुवन्धी और मिथ्यात्व के मद उदय मे मुनिव्रत धारण कर द्रव्य लिगी मुनि हुवा है और वही जीव को यदि सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जावे तो

जितनी कषाय छुटती जाती है इतनी शान्ति बढ़ती है शान्ति कहो या स्वानुभुति कहो या चारित्र कहो यह सब एक ही अर्थ वाची है। यह क्षयोपशम भाव दशवे गुण स्थान तक बढते बढते चला जाते हैं। जितने अश में कषाय की निवृनी वही स्वानुभूति है और ज्ञान तो वहाँ जैसा का तैसा हो है अर्थात ज्ञान परमे विकल्प रूप हो या स्वमे विकल्प रूप हो कषाय की निबृती रूप स्वानुभूति है। और विशेष देखिये—

१३७—पृष्ठ ६७८ पंक्ति ८ गाथा ५३१ स्वानुभूति यद्यपि मतिज्ञान स्वरूप है अर्थात मतिपूर्वक श्रुत ज्ञान रूप है इसलिये निरपेक्ष ज्ञान की तरह प्रत्यक्ष ज्ञान रूप है। जिस समय भाव मन केवल अमूर्त पदार्थ को ग्रहण करेहै जाने है अर्थात केवल आत्मा के ग्रहण करते है उसीं समय वह मन रूप ज्ञान भी अमूर्त ही है इसलिये वह अतिन्द्रिय प्रत्यक्ष है अर्थात मतिज्ञान से स्वात्मा का साक्षात्कार हो जाते हैं।

नोट—प्रथम मति श्रुत ज्ञान वह स्वानुभूति नहीं है स्वानुभूति चारित्र की अवस्था है। मति ज्ञान अमूर्त पदार्थ को कैसे ज्ञानेगे? क्या मतिज्ञान आत्म प्रदेश को देख लेवेगे। कदापि नहीं वह तो केवल सुख का

सम्यग्दर्शन प्रगट होते हैं तब ही व्यवहारभासो को व्यवहार और दर्शन मोहनीय के नाश से उत्पन्न आत्म श्रद्धान रूप सम्यग्दर्शन को भाव निक्षेप से निश्चय सम्यग्दर्शन कहते है ऐसा मत सब दिगम्बर आचार्यो के हैं।

नोट—प्रथम व्यवहार सम्यग्दर्शन ही होते है बाद निश्चय सम्यग्दर्शन होते। व्यवहार सम्यग्दर्शन ज्ञान गुण की पयांय है और निश्चय सम्यग्दर्शन श्रद्धा गुण की पर्याय है। दूसरी बात व्यवहार भाषी या निश्चयाभासी यह चरणानुयोग के विषय है क्योंकि चरणानुयोग ज्ञान के विषय है, करणानुयोग ज्ञान के विषय नहीं है। परोक्षा बुद्धि पूर्वक हो होती है। जिस जोव को देशना लब्धि प्राप्त होय है वह व्यवहार सम्यग्दृष्टि है। निश्चय सम्यग्दर्शन हमारे ज्ञान के विषय ही नहीं, उनकी व्यवहार में चर्चा भी नही वह तो केवल आगम प्रमाण है। वचन से और काय से परीक्षा की जाती है। जिसका वचन ठीक आगमानुसार है उनको आप क्या सम्यग्दृष्टि नही मानोगे ? आपके पास में और जानने का रस्ता हो नही तब नाम निक्षेप और भाव निक्षेप का प्रश्न ही कब होते है और कहा होते है वह जानना जरूरी है। द्रव्य निक्षेप से इन्द्र ने भगवान

आस्रव संवर निर्जरा बंध मोक्ष वह सम्यक्त्व है ।

यह भी व्यवहार सम्यग्दृष्टि है क्यो कि यह ज्ञान की पर्याय है और देखिये अष्ठ पाहुठ में भी लिखा है कि ।

छह द्रव्य णव पयत्था पंचत्थो सत्त तच्चजिदिट्ठा ।
सद्दहइ ताण रूव सद्दिट्ठो मुणेयब्बो ।।१६।।

यह भी व्यवहारार सम्यग्दृष्टि है एव व्यवहार निश्चय सम्यग्दृष्टि के स्वरूप निम्न प्रकार कहे है ।

जीवादी सद्दहणं सम्मत जिणवरेहि पण्णत्त ।
बवहारा णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मत्तं ।।२०।।

अर्थ—जीवादी कहे जो पदार्थ तिनका श्रद्धान सो व्यवहार सम्यक्त्व जिनेन्द्र देव ने कहा है और निश्चय में अपना आत्मा ही का श्रद्धान सो सम्यक्त्व है ।

प्रवचनसार ग्रन्थ के गाथा ८० में लिखा है कि—

जो जानता अरहन्त को गुण द्रव्य और पर्याय से
वह जीव जाने आत्म ने तसु मोहपामे क्षय खरे ।।

इससे सिद्ध होते है कि प्रथम व्यवहार सम्यग्दर्शन होते है बाद में हो निश्चय सम्यग्दर्शन होते है तो भी जिसको निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं हुवा है वह व्यवहार भाषा है वह कहना केवल वाक्य जाल है इससे तो सब

अनुसार तलवार के धार समान अडोल श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते है ।

नोट—तलवार के धार समान यदि सम्यग्दर्शन है तब क्षायिक सम्यग्दर्शन उपशम सम्यग्दर्शनादिक को क्या कहना ? वह तलवार के धार समान अडाले है या नही ? देवादि को श्रद्धा वही व्यवहार सम्यग्दर्शन है जिसकी आप तलवार की धार से उपमा देते है ।

१४०—पृष्ठ ६६१ पंक्ति ४ गाथा ५३५ भावार्थ सम्यग्दृष्टि को अनरंग क्रिया—सम्यग्ज्ञान (स्व सवेदन) और स्वरूपाचरण की प्राप्ति वाले ज्ञाता ही मोक्षमाग साघनार है क्योंकि मोक्ष मार्ग साधन वह व्यवहार और शुद्र द्रव्य अक्रियारूप (सद्स्वरूप) वह निश्चय ऐसा व्यवहार निश्चय के स्वरूप सम्यग्दृष्टि जानते है।

नोट—केवली भगवान सक्रिय है वहां निश्चय मोक्ष मार्ग की पूर्णता हुई है या नहीं ? जितने अश में सम्यग्दर्शन पूर्वक राग व व्यवहार मोक्ष मार्ग है और जितने अंश में स्वरूप को स्थिरता अर्थात राग के अभाव वह निश्चय मोक्षमार्ग किन्तु जो वीतराग बन गये अनन्त चतुष्टय के स्वामी बन गये है तो भी सक्रिय है उनको क्या व्यवहार मोक्ष मार्ग कहना

१४२–पृष्ठ ६६४ पंक्ति १६ गाथा ५३५ भावार्थ सम्यग्दृष्टि कदाचित स्वरूप ध्यान करने को उद्यमी होते है वहाँ प्रथम स्वपर के स्वरूप के भेद ज्ञान करे उनमे नोकर्म, द्रव्य कर्म, भाव कर्म, रहित चैतन्य चित् चमत्कार मात्र निज के स्वरूप जाने बाद में परका विचार सहज छुट जाते, केवल एक आत्मा के विचार रहे, वहां निज स्वरूप की विचार धारा चलती है कि हूँ चिदानन्द, शुद्ध, बुद्ध, निरंजन, निराकार, ज्ञाता दृष्टा स्वभावी हूँ ऐसे विचार करते सरज आनन्द तरग अतरंग महिमा की उठती है चित्त प्रसन्न होते है बाद में ऐसा विचार भी छूट जाने से केवल निज स्वरूप चिन मात्र प्रतिभासने लगते है।

नोट–देखिये लीखने मे कुछ लगते है ? क्या सम्यग्दृष्टि को स्वपर का भेद ज्ञान नही है ? यदि भेद ज्ञान नही है तो सम्यग्दृष्टि किस बात के है ? क्या पर विचार करने से बन्ध होते होगे ओर स्व का विचार करने से संवर निर्जरा होती होगी ? ऐसा वस्तु के स्वरूप नही है। हूँ एक, हूँ चिदानद हू, शुद्ध, बुद्ध, निरंजन, निराकार, ज्ञाता दृष्टा बालने से तीन कषाय छूट जावेगी ? यह विचार तो राग की पर्याय है उनमें से आनन्द तरग कैसे उठती होगी ? यह सब वाक्य

चाहिये ? व्यवहार और निश्चय मोक्ष मार्ग चारित्र की अपेक्षा से है या सक्रिय अक्रिय की अपेक्षा से है वह जाना बिना लिख देना वही वाक्य जाल है।

१४१—पृष्ठ ६६१ पक्ति ६ गाथा ५३५ भावार्थ सम्यग्दृष्टि की अतरग क्रिया-सम्यग्दृष्टि कदाचित बन्ध पद्धति के विचार करते है तव वह जानते है कि यह बन्ध पद्धति से मेरा द्रव्य अनादि काल मे बन्धन रूप चला आते है इसलिये वह क्षणमात्र भी वन्ध पद्धति मे मग्न नही होते किन्तु निज स्वरूप के विचार करे, ध्यावे, गावे, भ्रमण करे, एव नवधा भक्ति, सयम, तप, त्यागादि शुभ क्रिया निज शुद्ध स्वरूप सन्मुख होकर करे यह ज्ञानी के आचार है।

नोट—अव्रत्त सम्यग्दृष्टि जीव वन्ध पद्धति मे क्षण मात्र मग्न यही होते है वह कहना केवल वाक्य जाल है वहाँ अभी अव्रत भाव है दिनरात तीन कषाय से जल रहा है। संकल्पी हिंसा के भी अभी त्याग हुवा नही और स्वरूप मे मग्न ही होते वह कहना कहां तक सत्य है। अव्रती सम्यग्दृष्टि सयम तप मे प्रवृति कैसे करते होगे ? वहा तो अव्रत भाव है। पद के अनुसार प्रवृति करे या पद से विपरीत प्रवृति करेगे ? और विशेष देखिये।

भूल है। गुण भेद पकड नहीं सकते जिससे मनमानी लिख देते है। यही सब वाक्य जाल है।

१४४—पृष्ठ ७०५ पंक्ति १७ गाथा ५४०-५४१ लिखते है कि जो शुद्ध सम्यग्दृष्टि आत्मा स्वसमय और पर समय दोनो को जानते है वह स्वसमय है। और आगे क्या लिखते है वह देखिए ?

पृष्ठ ७०६ पंक्ति ८ चौथा गुणस्थान वाले जीव जघन्य अन्तरात्मा है और पांचवे गुणस्थान से ग्यारहवा गुणस्थान तक ऊपर ऊपर चढ़ने और विशेष विशेष विशुद्धता करने वाले जीव मध्यम अन्तरात्मा है। बारहवां गुणस्थान वर्ती जीव उत्तम अन्तरात्मा है वह सब पर समयी है। देखिये वीतराग भी परसमयी है। और आगे देखिये। पृष्ठ ७०६ पंक्ति १७ निज परमात्म स्वरूप में रमण वह स्वचारित्र रूप स्व समय है और पर स्वरूप में रमण करना वह परचारित्र रूप पर समय है। यहां १२ में गुणस्थान तक पर समय कह दिया। और देखिये—पृष्ठ ७०७ पंक्ति १ निज आत्मीक भाव में शुद्धोपयोग की प्रवृत्ति होना उनको स्व समय और पर द्रव्य में अशुद्धोपयोग की प्रवृत्ति होना उनको पर समय कहते हैं ऐसा आगम में प्रसिद्ध

जाल है । सम्यग्दृष्टि आत्म चिन्तन करते हे उसी समय पचम गुणस्थान वाले व्रती श्रावक व्यापार आदि कार्य करते हो तो भी पचम गुणस्थान वाले जीव को बन्ध कमती है और संवर निर्जरा विशेष है । अव्रत सम्यग्-दृष्ठि आत्म चिन्तवन करते भी तीन कषाय के बन्ध करते है जब व्रतो श्रावक व्यापारादि करते है तब दो कषाय के वन्ध है । दोनो में आत्म शान्ति किसकी है ? शान्ति से विचारना । यही वाक्य जाल अपने को फसा देती है और और जीवो को भी फसा देतो है । और त्रिटम्बना देखिये ?

१४३–पृष्ठ ६६८ पक्ति ५ गाथा ५३५ भावार्थ पर पदार्थ और उनकी पर्याय को जानना वह निश्चय सम्यक ज्ञान नही है किन्तु निज शुद्ध केवल ज्ञान द्वारा शुद्धात्मा के अनुभव करना वही निश्चय सम्यक ज्ञान है । अथवा शुद्धात्मा के ज्ञान रूप स्वाद के अनुभव से उत्पन्न शुद्धात्म सवेदना वही निश्चय सम्यक ज्ञान है ।

नोट–सम्यग्दृष्टि आत्मा निज को देखे पर को देखे उनका ज्ञान सम्यक ज्ञान है । स्व को देखना सम्यकज्ञान और पर को देखना मिथ्याज्ञान ऐसा ज्ञान के स्वरूप नही है । ज्ञान स्व पर प्रकाशक है । अनुभव वह चारित्र है उसे श्री मान सम्यक ज्ञान मानते है यही

समय है अर्थात ग्यारहवे बारहवे गुणस्थान वाले जीव स्वरूप में रमण करते है वह स्व समय और उनको भी पर समय लिखना कितने विरोधा भास है वह शान्ति से विचारना।

१४५–पृष्ठ ७०८ पंक्ति १७ गाथा ५४२-५४३

भावार्थ–प्रथम व्यवहार रत्नत्रय की प्राप्ति हो जावे बाद में ही निश्चय रत्नत्रय की प्राप्ति हो सकती है उनमें लेशमात्र सन्देह नही है। जो अनन्त सिद्ध हुवा और होवेगे सबने पहेला व्यवहार रत्नत्रय की प्राप्ति कर निश्चय रत्नत्रय रूप हुवे है व्यवहार रत्नत्रय साधन है और निश्चय रत्नत्रय साध्य है।

नोट–द्रव्य लिगो मुनि पंच महाव्रत पंच समिति और तीन गुप्ति के पालन करने पर भी उसे व्यवहार रत्नत्रय नहीं बोले जाते किन्तु उसे **मिथ्या चरित्र** ही बोले जाते हैं क्योंकि उस जीव ने निश्चय रत्नत्रय की प्राप्ति को नही है। जिससे निश्चय रत्नत्रय हुवा बाद ही जो राग अंश है उस राग अंश को व्यवहार रत्नत्रय बोले जाते है। व्यवहार रत्नत्रय के पालन करते करते निश्चय रत्नत्रय नही होते है किन्तु व्यवहार रत्नत्रय के अभाव से निश्चय रत्नत्रय को प्राप्ति होती

है। और देखिये ? पृष्ठ ७०७ पंक्ति १६ "किन्चित मात्र राग के रहना तब तक पर समय है अर्थात पूर्ण स्वरूपाचरण चारित्र में लीन नही होना वह पर समय है।

नोट—ग्यारहवे गुणस्थान वर्ती जीव को जघन्य अन्तरात्मा कहा और बारह में गुणस्थान में उतकृष्ट अन्तरात्मा कहा वहां दोनों को यथा ख्यात चारित्र है दोनों वितराग है तो भी जघन्य और उतकृष्ट के भेद पाड दिया ? दूसरी बात जो पर समय तथा स्व समय जानते है वह स्व समय है इस अपेक्षा से अव्रती सम्यग्-दृष्टि स्व समय है और आगे बारहवाँ गुणस्थान के जीव को भी पर समय कहना कहां तक उचित है ? वह पूर्ण स्वरूप मे रमण करते है तो भी पर समय कहना यही विचित्रता है यही वाक्य जाल है। तीसरी बात निज आत्मिक भाव मे शुद्धोपयोग की प्रवृति उन्हे स्व समय मानते है तब वह शुद्धोपयोग चौथे गुण स्थान से किन्चित प्रारम्भ हो जाते है वह स्व समय और पूर्ण वीतराग वह पर समय यह कितनी बिटम्बना है ? चोथी बात जो स्व स्वरूप मे रमण करे वह स्व

मार्ग को बाह्य सहकारी रूप निमित्त अर्थात पुद्गल की पर्याय मानना यही दिखाते हैं कि श्रीमान को निमित्त नैमितिक का ज्ञान ही नहीं है। जिसकी साथ आत्मा के साथ बन्धन रूप पदार्थ नहीं है ऐसे पदार्थ को वाह्य कहे जाते है। कर्म अन्तरंग निमित्त कारण है। बाह्य निमित्त आत्मा के कैसे हो जावे ? व्यवहार मोक्ष मार्ग भी आत्मा की ही पर्याय है। देखिये पंचास्तिकाय गाथा १६०

धर्मादि की श्रद्धा शुदर्शन पूर्वांग बोध सुबोध है।
तपस्याही चेष्टा चरण यही व्यवहार मुक्तिमार्ग है।

यह सब आत्मा को अर्थात उपादान की अवस्था है या बाह्य सहकारी निमित्त की अवस्था है ? विचार किया बिना लिखना यही वाक्य जाल है।

१४७—पृष्ठ ७१० पंक्ति १४ गाथा ५४२-५४३

भावार्थ—जैसे-जैसे उपादान कारण कार्य रूप (परिणाम) होने लगते हैं तैसे-तैसे निमित्त कारण की गौणता होती जाती है तो भी जब तक पुरुषार्थ नहीं हो पाते तब तक निमित्त कारण के संयोग सहकारी रूप हैं।

नोट—कर्म की साथ में ही आत्मा के निमित्त

है। जैसे पंचम गुणस्थान में ग्यारह प्रतिमा मे लंगोटी साधन है लंगोटी होते भी ग्यारह प्रतिमा वोली जावेगी किन्तु आगे जाने के लिए वही लंगीटी के त्याग करने से ही मुनि पर्याय होती है ऐसे व्यवहार के त्याग से ही निश्चय होते है तो भी प्रथम व्यवहार रत्नत्रय वाद निश्चय रत्नत्रय कहना उचित स्वरूप नही है। देखिये समयसार वन्धाधिकार गाथा २७३ जिनवर कहेल व्रत समिति गुप्ति और तप शील के करते भी अभव्य जीव अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है।

यहाँ व्यवहार रत्नत्रय नही वोले जाते क्योंकि यथार्थ को प्राप्ति विना व्यवहार का आरोप कैसे आवेगा ?

१४६—पृष्ठ १७० पंक्ति ११ गाथा ५४२-५४३

भावार्थ—निश्चय रूप मोक्ष मार्ग उपादान साधन है और व्यवहार नय रूप मोक्ष मार्ग निश्चय की प्रगटता के कारण वाह्य सहकारी रूप निमित्त कारण है।

नोट—निश्चय रत्नत्रय या मोक्ष मार्ग भी आत्मा की ही पर्याय है और व्यवहार रत्नत्रय या मोक्ष मार्ग भी आत्मा की ही पर्याय है तो भी व्यवहार मोक्ष

केवल सहकारी परम्परा रूप से मोक्ष के मार्ग जानते है।

नोट—निश्चय और व्यवहार कथन करने की रित है वह द्रव्य की परिणती नही है। जितने अंश में आत्मा में शुद्धता उतने अश मे निश्चय मोक्ष मार्ग बोले जाते है और जितने अश मे अशुद्धता इतने अंश में उसे व्यवहार मोक्ष मार्ग बोलें आते है। निश्चय रूप साधन नहीं है। साधन हमेशा पर द्रव्य ही होते हैं, या स्व द्रव्य होते है ? विचार माँगते है ? निश्चय मोक्ष मार्ग ही आत्मा की ही परिणती है और व्यवहार मोक्षमार्ग भी आत्मा की ही परिणतो है अन्य द्रव्य की नही है कि जिसको हम साधन बोले ? लिखने में कितनी बिटम्बना है यही देखना है तौ भी आपको ज्ञानी मानना और जीव को मूर्ख मानना यही वाक्य जाल है।

१४६ पृष्ठ ७१७ पंक्ति १६ गाथा ५४८ भावार्थ

सम्यक्त्व गुण में युक्त जे प्रधान पुरुष हैं यह देव के इन्द्र से और मनुष्य के इन्द्र से वदनीय है।

नोट—बदन चारित्र को ही होते है सम्यग्दर्शन को नही। देव के इन्द्र भी सम्यग्दृष्टि है और मनुष्य के इन्द्र चक्रवर्ती भी सम्यग्दृष्टि हैं वह अपने पद धारी

नैमितिक सम्बन्ध है और बाह्य निमित की साथ में नही। जैसे जसे कर्म के उदय के अभाव होते जावे तैसे तैसे आत्मा मे शुद्धता आती जावे जैसे जैसे आत्मा (उपादान) कार्य रूप होवे तैसे तैसे कर्म हटते जाते। कर्म निमित्त है आत्मा की पर्याय नैमितिक है नैमितिक पर्याय ही पराधीन पर्याय है। निमित नैमितिक सम्बन्ध मे हमेसा निमित की ही मुख्यता है। केवली भगवान का विहार नैमितिक पर्याय है उनमें केवली की आत्मा क्या पुरुषार्थ करेगी ? कर्म के अभाव हो जाने से विहार आप से आप वन्ध हो जावेगे ? इसी प्रकार दर्शन मोहनीयके क्षय-उपशम और क्षयोपशम से आप से आप सम्यग्दर्शन हो जावेगे ? प्रथम सम्यग्दर्शन हो जावे बाद मे कर्म के क्षय-उपशमादि होवे ऐसा सम्बन्ध नही है। कर्म के उदय ही आत्मा के पुरुषार्थ की हीनता दिखाते हैं। ऐसा न जानने से मनमानी लीखना यही वाक्य जाल है। और देखिये।

१४८—पृष्ठ ७११ पक्ति ५ गाथा ५४२-५४३—विशेषार्थ-ज्ञानी (अनुभवी) उपादान वा निश्चय रुप साधन को ही साक्षात मोक्षमार्ग और व्यवहार को

५

श्रीमान क्षुलकजी जिनेन्द्र कुमार जी वर्णी ने नय दर्पण नाम का ग्रन्थ लिखा है जिसका प्रकासन इन्दोर से श्री सौ प्रेम कुमारी जैन स्मारक ग्रन्थ माला से वीर निर्वाण संवत २४६१ में हुआ हे, वह ७७२ पन्ना का ग्रन्थ है। श्रीमान क्षुलक जी महाराज की कथन शैलो, लीखने का ढग बहुत ही सुन्दर हे। यह ग्रन्थ मे प्रधान तया नय का वर्णन है कुछ बाते तत्व के विषय मे भी है। मनन करने योग्य है। कुछ शंकाओ उत्पन्न होते खुलासा करने का क्षुलक जी महाराज को प्रार्थना भी की किन्तु वह बहुत हो इस विषय मे अर्थात प्रश्न के खुलासा करने मे उदासीन हे। प्रवचन देने में उदासीन नही है शास्त्र लीखने में उदासीन नही है। अपनी प्रतिज्ञा भंग करने में उदासीन नही है जैसे रेलगाडी में बैठना उदीष्ट आहार लेना शीतकाल में घास ओढ़ना इत्यादि मे उदासीन नही है।

को नमस्कार कैसे करेंगे ? विशेष गुणवान की ही भक्ति होती हे। यथार्थ मे सम्यग्दृष्टि आत्मा पंच इन्द्रिय के विजेता मुनिराज की ही भक्ति करते है अन्य की नही। तो भी सम्यग्दष्टि वदनीक है पूजनीक हैं वह लिखना केवल वाक्य जाल है। इत्यादि–

आपकी पास नही है। भले ही आगे जाकर हो जावे। अब तो प्रश्न यह है कि इस अदृष्ट विषय को आपके ज्ञान पट पर चित्रित कैसे किया जावे। यह तो पहले ही स्पष्ट किया जा चुका ते कि चित्रित वह कर सकेगा जिसने किसी भी रूप मे धुन्धला मात्र भी उसका प्रत्यक्ष किया हो। केवल सुने हुए शब्दों को दुहराने से ऐसा होना संभव नहीं हैं। खेर यह तो प्रश्न है कि चित्रण कैसे किया जावे।

नोट–जिस जीव ने आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव किया हो वही जोव आत्मा का कथन कर सकते हैं किन्तु केवल शब्द सुनने से श्रोता को लाभ नही हो सकता है। अर्थात निश्चय सम्यग्दृस्टि के मुख से ही वाणी सुनने से ही सम्यग्दर्शन अन्य जीव को हो सकता है व्यवहार सम्यग्दृष्टि ओव के मुख से वाणी सुनने से सम्यग्दर्शन नही हो सकता है। श्रोता वक्ता का भाव देखते है या वाणी सुनते है ? सूत्रकार लिखते है कि तन्निसर्गाधिगमाद्वा ॥३ अधिगम सम्यग्दर्शन में गुरु के मुख से वाणी सुनते है वह वाणी सम्यग्दर्शन होने में कारण पड़ती है गुरु का भाव नहीं। रेकर्ड सुनकर जीव अपना भाव सुधार लेते है वहाँ रेकर्ड में भाव तो है ही नही केवल वही शब्द से ही ज्ञान किया है।

किन्तु शंकाओं का वीतराग भाव से चर्चा करने मे ही उदासीन है। उनकी ही शिष्याणी ब्रह्मचारिणी कुमारी कौशल ने मेरा पत्र एवं शंकाओ का खुलासा करने की कृपादृष्टि की। श्री कुमारी कौशल की लेखन शैली समझाने का ढंग अत्यण्त सुन्दर मीष्ट भापा इतनी है कि जिसकी प्रससा में नही कर सकता हूँ। उनकी मिस्ट भाषा एव लिखने की शैली ने मेरा ऊपर अत्यन्त प्रभाव डाला है। मैं अंतरग से उसे धन्यवाद देता हूँ। इसी प्रकार यदि हमारी बहेनो तैयार हो जावे तो जैन धर्म का डंका विश्व मे फेल सकते हैं। किन्तु दु.ख इस वात का है कि वह क्षुलक जी महाराज को गुरुदेव मानती है। य- विनय मिथ्यात्व रुपी पिशाच न किसी कु छोडा नही विनय मिथ्यात्व की भी गहन महिमा है अच्छे अच्छे शास्त्र के जानकार भी इस घक्कर से वचे नहीं यही दशा कुमारी कौशल की भी है।—यह प्रश्न क्या है यह यदि पाठक के सामने रखा जावे नो विशेप लाभ होगा यह समझकर लिखता हूँ।

१—पृष्ठ २५ पक्ति १३ वर्त्तमान अवस्था मे दर्पण मे प्रतिबिम्बवत अध्यात्म के प्रत्यक्ष ज्ञान की तो आपसे ध्यान करना ही निरर्थक है क्योंकि यह साधन अभी

बन्ध मे निमित्त कैसे बन सकते है उनकी वाणी निमित्त पड़ती है उसी प्रकार सम्यग्दर्शन प्राप्त करने में व्यव-हार सम्यग्दृष्टि की वाणी ही कारण पड़ती है उनका भाव नही। वाणी यथार्थ आगम अनुसार होनी चाहिये अर्थात जिसको देशना लब्धि हो गय है उनकी वाणी सम्यग्दर्शन में वाह्य निमित हो सकती है।

२–पृष्ठ ३५ पक्ति २५ आत्मा तो ज्ञान स्वरूप है इसका चारित्र भी ज्ञान स्वरूप है और श्रद्धा भी ज्ञान स्वरूप है। ज्ञान से अतिरिक्त चारित्र और श्रद्धा कोई भिन्न वस्तु नही है। सब एक मे है।

नोट–अंग और अगी–आत्मा अंगी है या ज्ञान अगी है ? आत्मा में ज्ञान है किन्तु ज्ञान मात्र आत्मा नही है। आत्मामें चारित्र है किन्तु चारित्र मात्र आत्मा नही है। अंगो एक होते अग अनेक है। इससे सिद्ध होते है कि ज्ञान वह चारित्र नही है, ज्ञान वह श्रद्धा नही है। किन्तु सब आत्मा मे है। सूत्रकार लिखते है कि "द्रव्या श्रया निर्गु णा गुणा" ॥४१। अ५ द्रव्य में सब गुण है किन्तु एक गुण मे दुसरा गुण का अन्योन्य अभाव है। श्रद्धा चौथे गुणस्थान से शुद्ध हो जाती है चारित्र बारह वे गुणस्थान में शुद्ध हो जाते

नियमसार ग्रन्थ मे ५६ वी गाथा मे लिखा है कि सम्यग्दर्शन का निमित कौन है ?

जिन सूत्र सूत्र ज्ञाता पुरुष बाह्य हेतु है समकित का।
जान अन्तर हेतु दर्शन मोह क्षयादि थाय ते ॥

जिन सूत्र मे केवल शब्द है वहाँ भाव नही है तो भी शास्त्र वाचकर जीव सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कर सकते है और क्षुल्लक जी महाराज लिखते है कि निश्चय सम्यग्दृष्टि की वाणी होना चाहिये ? कितनी विषमता ? अपने को निश्चय सम्यग्दृष्टि बताने की मायाचारी कर रहे है यही वाक्य जान है।

श्री मन्दिरजी मे श्री जी की सन्मुख एक मनुष्य सुन्दर कण्ठ से भक्तामर स्तोत्र बोल रहा है। दूसरा मनुष्य यह सुनकर शान्ति से वह भक्तामर स्तोत्र सुन रहा है। इतने मे एक नव जुवान स्त्री दर्शन करने कु आती है उनका रूप भक्तामर स्तोत्र बोलनार मलिन भाव से देख रहा है। अब विचारीये भक्तामर स्तोत्र बोलनार पुन्य बाधेगा या पाप ? तब कहना पड़ेगा पाप ? दूसरा जीव उनकी वाणी शान्ति से सुनते है वह क्या बाधते है तो कहना पड़ेगा पुन्य ? यह पुन्य भाव होने मे वही मनुष्य का भाव निमित्त हुआ है या उनकी वाणी ? मलीन भाव पुन्य

किन्तु जो ज्ञान इन्द्रिय और मन को सहायता से होते है वह ज्ञान परोक्ष ज्ञान है और जो ज्ञान इन्द्रिय और मन की सहायता बिना होता है वह प्रत्यक्ष ज्ञान है। नियमसार में कहा भी है कि

उपयोग मय है जीव और उपयोग दर्शन ज्ञान है।
ज्ञानोपयोग स्वभाव और विभाव रूप द्विविध है।
असहाय इन्द्रिय विहीन केवल ते स्वभाविक ज्ञान है।
सुज्ञान और अज्ञान ऐसे विभाव ज्ञान द्विविध है।

देखिये प्रत्यक्ष और परोक्ष किसे कहते है ? मन--मानी कल्पना कर कह देना वही वाक्य जाल है।

४—पृष्ठ ४३ पंक्ति १४ प्रत्यक्ष और परोक्ष ज्ञान में महान अन्तर है। प्रत्यक्ष ज्ञान में स्वभाविक ग्रहण होता है और परोक्ष ज्ञान में कृत्रिम। स्वभाविक ग्रहण में गलती होना असभव है और कृत्रिम ग्रहण में उसकी बहुत सम्भावना है।

नोट—श्रुत केवली और साक्षात केवली में कोई अन्तर नही है केवल प्रत्यक्ष और परोक्ष का ही अन्तर है। यदि गलती कहोगे तब वह सम्यक् ज्ञान नहीं बन सकता ? बारहवे गुणस्थान में जैसा शान्ति का अनुभव लेते है वैसा ही तेरहवे गुणस्थान में शान्ति का अनुभव करते है। फर्क मात्र प्रत्यक्ष और परोक्ष का है।

है, ज्ञान तेरहवे गुण स्थान पें शुद्ध होता है, जिससे सिद्ध हुवा कि ज्ञान वह चारित्र और श्रद्धा नहीं है।

श्री ब्रह्मचारणी कुमारी कौशल प्रश्न के जबाव में लिखते है कि यह कथन हमने निश्चय नय से कीया है ? यह भी गलत जबाव है निश्चय नय अभेद को ही ग्रहण करती है भंद को नही, और यह भेद कथन है जो व्यवहार कथन है। निश्चय नय गुण गुणी भेद स्वीकार नही करते है वह तो केवल अखण्ड को ही स्वीकारता है।

३–पृष्ठ ४३ पंक्ति २ "यहाँ ज्ञान दो प्रकार के सिद्ध हो गया। एक प्रति बिम्व रूप और एक चित्रण रूप। प्रतिबिम्व तो पदार्थ के प्रत्यक्ष द्वारा हो होना सम्भव है इसलिए उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहते है। परन्तु क्योंकि उपरोक्त प्रकार चित्रित ज्ञान शव्दो आदि के आधार पर से अन्य पदार्थों को समझाने के अनुमान के आधार पर उत्पन्न हुआ है उसे परोक्ष ज्ञान कहते है।

नोट–ज्ञान गुण सामान्य है नित्य है उनकी ही पाच पर्याय होनी है। मति, श्रुत, अवधि, मन. पर्यय:, और केवल ज्ञान। ज्ञान की अपेक्षा से सब ही ज्ञान की पर्याय है उनमे प्रत्यक्ष परोक्ष किस को कहनी ?

नही है, उसो प्रकार ज्ञान वस्तु नही है वह वस्तु का एक अंग है।

६–पृष्ठ ४५ पंक्ति १५

नं० ५–दृष्ट वस्तु का साक्षात्कार होने पर जो प्रतिबिम्ब रूप से ज्ञान में उस अनेकान्त वस्तु का अखण्ड ग्रहण होता हैं उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं।

नं० ६–वक्ता अपने ज्ञान के आधार पर जो दृष्टाँतों आदि के द्वारा निरूपण करके श्रोता के ज्ञान पट पर उस अनेकान्त वस्तु का एक अखन्ड चित्रण बना पाता है उसका नाम परोक्ष ज्ञान हे।

नोट–चतुर्थ गुणस्थान में आत्मानुभूति हो जाती है एसे जीव के ज्ञान को सम्यकज्ञान कहा जाता है इसका यह अर्थ नहीं है कि उनका प्रत्यक्ष ज्ञान हो गया - क्षयोपशम ज्ञान नियम से परोक्ष ही होता है प्रत्यक्ष ज्ञान क्षायिक ज्ञान है। तो भी प्रत्यक्ष ज्ञान लिख देना वही वाक्य जाल है।

दूसरी बात बक्ना श्रोता के ज्ञान पर चित्रण कैसे बना सकता है ? क्या श्रोता का ज्ञान वक्ता के आधीन है। वक्ता के साथ में श्रोता का बन्धन सम्बन्ध भी नहीं है दोनों का सयोग सम्बन्ध भी नही है तब वह चित्राण कैसे कर सकते है ? जिनेन्द्र भगवान

बारहवें गुणस्थान मे आत्म प्रदेश देखने नही है और तेरहवें गुणस्थान में आत्म प्रदेश देखते है । शान्ति मे कुछ अन्तर नही है ।—जो भी प्रत्यक्ष ज्ञान को स्वभाविक ग्रहण कहना और परोक्ष ज्ञान को कृत्रिम ग्रहण कहना केवल वाक्य जाल है । आपने सम्यक्ज्ञान को प्रत्यक्ष और मिथ्या ज्ञान को परोक्ष माना है । यही भूल रह गये है ।

५—पृष्ठ ४४ पक्ति ६ "गु.. व पर्याय द्रव्य के अग है । इनको द्रव्य से पृथक नहीं किया जा सकता । वस्तु सर्व अंगों का समुदाय रूप ही है । और इसलिये तदनुसार ज्ञान भी उन अगो का समुदाय रूप ही होना चाहिये ।

नोट—वस्तु द्रव्य का नाम है गुण और पर्याय का नाम नही है । वस्तु मे अर्थात द्रव्य मे गुण पर्याय है किन्तु गुण वह द्रव्य नही है । ज्ञान गुण है या द्रव्य है ? यदि ज्ञान गुण है तब वह उन अगो का समुदाय रूप कैसे हो सकता है । ज्ञान खुद अग है ऐसे अनेक अगो का समुदाय वस्तु अर्थात द्रव्य है । तो भी ज्ञान कु वस्तु कह देना कितनी भूल है । द्रव्य मे ज्ञान भी है । चारित्र भी है श्रद्धा भी है वीर्य भी है किन्तु वीर्य वस्तु

कि आपके हृदय पट पर भी इन शब्दों के भावों को एकत्रित करके वही चित्रण अंकित न हो जावे ।

नोट—देखिये कितनी बिटम्बना ? जो कार्य जिन वाणी करती है इतनी ही महिमा वक्ता की हैं कुच विशेषता नही ? जिनवाणी में कौनसा सम्यग्दर्शन है ? तब सम्यग्दृष्टि की ही वाणी कार्य कारी हो सकती हैं वह लिखना कहाँ तक उचित है । मूल आधार श्रोता का उपयोग है और वह उपयोग में केवल वाणो ही कारण पड़ती है किन्तु वक्ता का भाव नही ? दूसरी बात ज्ञान दो प्रकार का दिखाया ? ज्ञान परोक्ष ही हैं तो भी एक सम्यक् ज्ञान है एक मिथ्या ज्ञान हैं । यथार्थ में प्रतिबिम्व की अपेक्षा से तो दोनों ज्ञान समान हैं किन्तु सम्यग्दर्शन के कारण वही ज्ञान को सम्यक्ज्ञान बोला जाता है और मिथ्यादर्शन के कारण वही ज्ञान को मिथ्या ज्ञान बोला जाता है यह तो श्रद्धा का व्यप देश होता है किन्तु ज्ञान की अपेक्षा से ज्ञान ज्ञान ही है । दोनो ज्ञान समान होते एक ज्ञान को प्रत्यक्ष कहना दूसरे ज्ञान को परोक्ष कहना केवल वाक्य जाल है । निरपेक्ष ज्ञान का नाम प्रत्यक्ष ज्ञान है और सापेक्ष ज्ञान का नाम परोक्ष ज्ञान है ।

७—पृष्ठ ७५ पक्ति १८ ज्ञान का चारित्र भिन्न

भी नित्राण नही कर सकते तो साधारण जीव की तो वात ही क्या है। वक्ताओं का वाह्य निमित्त कहा है जेसा जिनवाणी निमित्त है तैसे ही वक्ता निमित्त है। श्रोता खुद उन वाणी पर उपयोग न लगावे तो वाणी की क्या किमत है ? उपयोग लगाने से वाणी को निमित बोली जाती है वहाँ निमित की मूख्यता नही है किन्तु उपादान की मुख्यता है। वही वात खुद पन्ना ४६ पर लिखते है। एक ज्ञान होता है प्रतिविम्व रूप और एक होता है चित्रण रूप। दोनों ही सत्य हो सकते है यदि वे ज्ञेय वस्तु के अनुरूप हो। इन दोनों मे प्रतिविम्व तो नियम से अनुरूप होता है अत. वह तो झूठा या मिथ्या हो हो नही सकता पर चित्रित ज्ञान मिथ्या व सम्यक दोनों प्रकार का हो सकता है क्योंकि यह प्रत्यक्ष नही परोक्ष है दृष्ट विषय सम्बन्धी नही अदृष्ट विषय सम्बन्धी है। इसका आधार वस्तु नही है शब्द है जो वक्ता के मुख से निकलकर आपके कर्ण प्रदेशो तक पहुँच रहे हैं या जो आगम मे पढकर नेत्र द्वारा ग्रहण कर रहे है। वक्ता के शब्द सत्य है क्योकि वह तो अन्तरग मे पडे चित्रण को खन्डित करके निकल रहे है पर आप मे वही शब्द सत्यता का रूप उस समय तक धारण नही कर सकते जब तक

चारित्र कसे बन जावेगा ? यद्यपि प्रदशे भेद नही है तो भी निर्गुणा गुणा वह सूत्र की रक्षा कर कथन करना चाहिये ।

८—पृष्ट ७६ पंक्ति १४ इन सातो का अखण्ड चित्रण जो की आगम को जानना अभीष्ट है वह तो ऐसा है कि में एक जीव या चेतना हुँ। यह शरीर रूप अजीव मेरे जोवन का कलक है । इसके आधार पर जो भी मन वचन काय की क्रिया नित्य करता हूँ वह मेरे जीवन का अपराध ही 'आस्रव' है । पुनः पुनः वह अपराध करके बराबर उनका पोषण करता आ रहा हूं इस प्रकार जोवन में एक प्रबल संस्कार उत्पन्न कर लिया है जो कि पुन पुनः वह अपराध करने के लिए मुझे प्रेरित करता है उसी का नाम 'बन्ध" है। मन को काबु में करके ,उसकी चंचलता को रोककर उसे शान्ति में स्थिर करने का प्रयास करे तो वचन व शरीर की क्रिया मे स्वत काबु में आ जाये यही "संवर" है । धीरे धीरे अभ्यास करते करते अधिकाधिक बल के साथ बड़ो से बड़ो प्रतिकुलता में भी मन की स्थिरता को बनाये रखने की शक्ति उत्पन्न हो जायगो इस प्रकार यह संस्कार खंड खंड हो जायगे यही "निर्जरा" है। और सस्कारों व अपराधों से सून्य

भिन्न स्वतन्त्र वस्तु थोड़ी ही है। कि जब चारित्र होगा तब ज्ञान न होगा और जब ज्ञान होगा तब चारित्र न हो-सकेगा। वह तो सर्वत्र ज्ञान रस वाला ही प्रमुखतः है। उसका चारित्र भी ज्ञानात्मक है और ज्ञान भी चारित्रात्मक है-दोनों एक अखण्ड रस रूप है।

नोट—दर्शन ज्ञान चारित्र श्रद्धावीर्यादि अंग हैं या अंगी ? अंगी में सब अंगो हैं लेकिन एक अग मे दूसरा अंग कैसे चला जावेगा ? यद्यपि प्रदेश भेद नहीं है तो भी गुण भेद है या नहीं ? गुण सब स्वतन्त्र हैं। चारित्र गुण क्षायिक भाव से परिणमन करता है तब ज्ञान क्षयोपशम भाव से परिणमन करता है। ज्ञान तथा चारित्र दोनों एक कैसे बन जावेगा ? आप खुद पृष्ठ ४५ लिखते है कि।

६—वस्तु के त्रिकाली अंगों का नाम गुण है।

१०—प्रत्येक गुण के क्षणवर्ती परिवर्तनशील अंगों का नाम पर्याय है।

११—अनेक पर्यायों के समूह गुण हैं और अनेक गुणो का समूह वस्तु है।

आप खुद प्रत्येक गुण लिखते हो तब ज्ञान प्रत्येक चारित्र प्रत्येक आदि अलग अलग हैं या नही ? जब अलग है तब ज्ञान दर्शन कैसे हो जावेगा ? दर्शन

योग गुण का कम्पन्न होना यथार्थ में आस्रव है। पुनः पुन: अपराध के लिये मुझे प्ररित करता है यदि वह बन्ध है तो सम्यग्दृष्टि चाहता नहीं है तो भी वहाँ बन्ध है निगोदीया जीव प्रेरित बन करते नही तो भी वहाँ बन्ध हैं। केवली स्वरूप गुप्त है तो भी वहाँ बन्ध हैं। यथार्थ में मिथ्यात्व भाव कषाय भाव और लेश्या रूप प्रबृत्ती वन्ध का कारण है यही बन्ध है। मन की स्थिरता बना रखने को शक्ति यदि निर्जरा तत्त्व हो जावे तो सम्यग्दृस्टि आत्मा आत्म चिन्तवन करता है वहाँ निर्जरा नही है और व्रती श्रावक भोग करते भी निर्जरा विशेष है और बन्ध कमती है। यथार्थ मे यह निर्जरा का स्वरूप नहीं है। सम्यग्दर्शन हुवा बाद अपने अपने गुणस्थान की अनुसार जितनी इच्छा का यम रूप त्याग करना वही निर्जरा तत्त्व है। अपराध से शून्य पूर्ण शान्त जीवन मोक्ष तत्त्व होवे तो केवली भगवान में मोक्ष तत्त्व की प्राप्ति होना चाहिये किन्तु वहा होता नही। यथार्थ में आत्मा की संपूर्ण गुण की शुद्धता हो जाना वही मोक्ष तत्त्व हैं और अजीव तत्त्व का अभाव होना यह व्यवहार मोक्ष तत्त्व है।

९—पृष्ठ ८१ पंक्ति १२

पूर्ण शान्त जीवन ही मोक्ष है। यह है सात तत्वो का अखन्ड ग्रहण। एक मे सात और सात मे एक दिखाय दे। उसे अखंड ज्ञान कहते है ऐसा अभिप्राय है। इस प्रकार के अखंड ज्ञान के अभाव में उन सातो का प्रथक् प्रथक् ग्रहण मिथ्या ग्रहण है। क्योंकि जीवन से पृथक् आस्रव आदि की सत्ता ही लोक मे नही है।

नोट—यह सात तत्त्वो का स्वरूप ? एक एक तत्त्व स्वतन्त्र है उनमे अजोब तत्त्व प्रदशे भेद है और छह तत्त्वो मे प्रदशे भेद नही है तो भो अलग अलग है। मिथ्यादृष्टि मे सातमें मे से चार ही तत्त्वो है। सम्यग्दृष्टि मे छह तत्व मौक्ष रहित है। दशवे गुणस्थान में निर्जरा तंत्व नही है। मात्र पांच है। केवलो मे पांच तत्वो है। चोदहवे गुणस्थान मे सोर्फ जीव अजीव तत्व है। सिद्ध मे केवल जीव तत्व है। विचारी ये अलग अलग है कि नही। दूसरी बात अजीब तत्व यदि कलक रूप है तो केवली मे भी अजीव तत्व है वहाँ भी कलक रूप मानना ही पड़ेगे ? मन वचन काय कि क्रिया नित्य करता हूँ यदि वह आस्रव तत्त्व है तो केवलो क्रिया करते नही है तो भी वहाँ आस्रव हैं और निगोदी या जीव क्रिया करते नही तो भी वहाँ आस्रव है। मन वचन और रूपी पुद्गल पीन्ड के द्वारा

शब्द ज्ञान में क्या गलती आ सकती है ? किन्तु अपने को सम्यग्दृष्टि दिखाने को यह मिथ्यात्वगर्भित चेष्टा है। यही तो केवल वाक्य जाल है।

११–पृष्ठ ६१ पंक्ति ६ जैसे के अपने पुत्र को बच्चे से युवा होते तक तो आप यह वही मेरा पुत्र है इस प्रकार की बात बरोबर याद रखते हो परन्तु मृत्यु के पश्चात वही प्राणी जब अन्यत्र जन्म लेकर आपके सामने आते है तो आप उसे वही न समझ कर कोई नया ही व्यक्ति समझने लगते हो। बस यही वह उलझन है जिसे दूर करना अभिष्ट है।

नोट—आत्मा को कथंचित नित्य और कथंचित अनित्य माना है। वह आप स्वीकार क्यों नहीं करते हो ? जब पर्याय से देखते हैं तब वह नही है और द्रव्य से देखते है तब वही ही है। चश्मा दो है एक नहीं है। आप एक ही बता देने को चाहते हो वह कैसे हो सकते है। देखिये दो चश्मा पंचास्तिकाय गाथा १६-५४

ऐसे सत व्यय और असत उत्पाद होय न जीव को
सुर नर प्रमुख गति नाम का हद युक्त काल होय है।१६
ऐसे सत व्यय और असत उत्पाद होय है जीव को।

८ प्रत्यक्ष ज्ञान—वस्तु के अनुरूप ज्ञान पर पड़ा सहज प्रतिबिम्ब प्रत्यक्ष ज्ञान है।

९ परोक्ष ज्ञान—शब्दों और भावों के अनुमान के आधार पर ज्ञान पट पर खेंचा गया वस्तु अनुरूप कृत्रिम अखन्ड चित्रण परोक्ष ज्ञान है।

नोट—सम्यक् ज्ञान को प्रत्यक्ष ज्ञान माना है और मिथ्याज्ञान को परोक्ष ज्ञान माना है। श्रद्धा को ज्ञान में घुसेड दिया दोनों को एक बना दिया यही वाक्य जाल है। इन्द्रियाधीन ज्ञान क्षयोपशम ज्ञान पराधीन परोक्ष ज्ञान है। इन्द्रियातीत क्षायिक ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान है।

१०—पृष्ठ ८२ पंक्ति ५ "इस पर से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि अनुभव ज्ञानी ही यथार्थता नयोका प्रयोग कर सकता है शब्दागम ज्ञानी नही।

नोट—नय का स्पष्टी कर ग्यारह अग के पाठी क्या नही कर सकता होगा ? कासी में ब्राह्मण जैन अध्यापक है वह नय का प्रतिपादन यथार्थ कर देते है जिसको सुन कर अन्य जीव सम्यग्दृष्टि बन जाते है और अध्यापक मिथ्यादृष्टि है। शास्त्र में ज्ञान नहीं है वह अन्य जीव यथार्थ क्या नही पढ़ सकते है।

है। उपचार कथन को सत्य कैसे माना जाय ? ज्ञान दर्शन, वीर्य, श्रद्धा, और चारित्र गुण भावात्मक है किन्तु क्रिया गुण, योग गुण, आदि माव आत्मक है या क्रियात्मक है ? शान्ति से विचारीये। और आगे देखिये—पक्ति १६ पर द्रव्थ पर्याय का दूसरा नाम व्यंजन पर्याय है और गुण पर्याय का दूसरा नाम अर्थ पर्याय है। प्रदेश गुण की पर्याय का नाम व्यंजन पर्याय है ? प्रदश गुण छोड़ कर अन्य गुण की पर्याय को अर्थ पर्याय कहते है ओर प्रदेश गुण की पर्याय कों व्यंज्जन पर्याय कहते है।

१३—पृष्ठ १२४ पंक्ति १ इस प्रकार इन चार (ज्ञान चारित्र श्रद्धा वेदना) शक्यों को सक्षिप्त परिचय दिया गया। यहा इतना ही समझना चाहिये कि आत्मा तो ज्ञान पुंज है। यह ज्ञान ही अनेक प्रकार से प्रगट होकर भिन्न भिन्न शक्तियों रूप बन बेठता है।

नोट—प्रथम चारित्र और वेदना में कोई अन्तर नही है केवल शब्द भेद है। दूसरो वात कभी ज्ञान ज्ञान बनकर कार्य करे कभी ज्ञान चारित्र बन कर कार्य करे कभी ज्ञान श्रद्धा बन जावे। क्या ऐसा बहुरूपोया ज्ञान है ? क्या रस गुण रूप हो जावेगा रूप

कहा जिने जो पूर्व अपर विरुद्ध भी अविरुद्ध है। ५४

यह दोनो बात न मानने वाला एकान्त मिथ्या-दृष्टि है।

तिर्यंच नारक देव मानव नाम की है प्रकृति जे
वह व्यय करे सत भाव का उत्पाद असत का करे।५५

१२–पृष्ठ ६७ पंक्ति ४ "द्रव्य प्रदेशात्मक स्वीकार किया गया है जब कि गुण भावात्मक। इसलिये द्रव्य व गुण की पर्याय के लक्षण करते समय भी यह बात ध्यान मे रखनी चाहिये कि द्रव्य पर्याय प्रदेश प्रमुख मानो है और गुण पर्याय भाव प्रमुख। इसो लिये आगम में द्रव्य पर्याय का लक्षण उस वस्तु का द्रव्य का सस्थान या आकृति किया गया है।

नोट—द्रव्य पर्याय नर-नारक तिर्यंच मनुष्य हैं उनका निमित कारण गति नामका कर्म है किन्तु संस्थान कर्म नही है। मनुष्य गति का नाश हुवा और देव बनने को जीव विग्रह गति में जा रहा है वहां जोव द्रव्य की देव गति प्रारम्भ हो गये है किन्तु आकार मनुष्य गत्यानू पूर्वी रूप है। इससे सिद्ध हुवा की द्रव्य पर्याय अलग है और प्रदेश गुण की पर्याय अलग है। चौदवे गुणस्थान के प्रथम समय में प्रदेशत्व गुण शुद्ध हो जाता है तो भी वहां जीव द्रव्य विकारी

जावेगा। मिस्र भाव में शुद्धता और अशुद्धता दोनों मिल कर ही मिस्र भाव होते हैं किन्तु उनमें जितनी शुद्धता है उनका नाम मिस्र नहीं है। यह बात लक्ष मे रखना क्याकि यह भूल आगे बन पायेगा।

१५--पृष्ठ १२६ पंक्ति ६ ज्ञान का पूर्ण अशुद्ध भाव पूर्ण अधकार रूप जिसमे कुछ भी जाना न जा पके, शुद्ध भाव है पूर्ण प्रकाश जिसमे समस्त विश्व जाना जा सके जसे कि भगवान मै है, और शुद्धा शुद्ध भाव अधुरा प्रकाश जसे हम सभी मे हैं।

नोट--ज्ञान कभी पूर्ण अंधकार रूप होते ही नही यदि ज्ञान पूर्ण अन्धकार रूप हो जावे तो आत्मा जड़ बन जावे। ज्ञान की दो ही अवस्था होती हैं। १ शुद्ध क्षायिक भाव, दूसरी मिश्र भाव अर्थात क्षयोपशम भाव। नियमसार ग्रन्थ में कहा भी है कि गाथा १०-११-१२।

उपयोगमय हैं जीव और उपयोग दर्शन ज्ञान है।
ज्ञानोपयोग स्वभाव और विभाव द्विविध है।
असहाय इन्द्रिय विहीन केवल ते स्वभाविक ज्ञान है।
सुज्ञान और अज्ञान ऐसे विभावज्ञान द्विविध है।
मति श्रुत अवधि मन पर्यय: भेद है सुज्ञान का।
कुमति कुअवधि कुश्रुत यह तीन भेद हैं अज्ञान का।

गुण गन्ध हो जावेगा ? गंध गुण स्पर्श बन जावेगा ? नही तो ज्ञान बहुरूपीया कैसे बन जावेगा ? इसी का नाम वाक्य जाल है। आत्मा मे अनन्त गुण है एक गुण दूसरे गुण रूप बन नही सकता तो भी सब गुण एक ही आत्म प्रदेश मे रहते है। वह गुण को घात करने वाला कर्म भी अलग अलग है। क्या मोहनीय कर्म ज्ञान को घात करेगा ? नही ! तब ज्ञान सब गुण रूप कैसे बन जावेगा ?

१४—पृष्ठ १२४ पंक्ति १३ (गुण की तीन अवस्था) शुद्धपना अशुद्धपना तीन प्रकार का हो सकता है। १ पूर्ण शुद्ध पूर्ण अशुद्ध ३ शुद्ध व अशुद्ध का मिश्रण। यद्यपि शुद्ध व अशुद्ध तो एक एक ही कोट के हो सकते है पर शुद्धाशुद्ध तो असख्यात कोटियो के हो सकेगे ।

नोट—शुद्धता एक प्रकार की है किन्तु अशुद्धता अनेक प्रकार की होती है जैसे अनन्तानुबन्धी कषाय का तीव्र भाव, तीव्रतर भाव. तीव्रतम भाव, मन्द भाव. मन्दतर भाव, मन्दतम भाव, अशुद्धता मे अन्तर होते भी वह अशुद्ध ही वोला जावेगा किन्तु अशुद्धता मे अन्तर नही है वह बात नही है। उसी प्रकार मिस्र में की असंख्यात भाव होते है तो भी वह मिस्र ही बोला

हो या शुद्ध लेश्या रूप हो तो भी अशुद्ध है। जिसमें अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान व सज्वलन कषाय रूप भाव हो वह मिश्र भाव है। जिसमें कोई भो कषाय नहीं है। ऐसे ग्यारवे गुण स्थान बारहवे गुणस्थान में शुद्ध भाव है। यही परमार्थ सत्य है शेष वाक्य जाल है।

१७—पृष्ठ १२७ पंक्ति ८ श्रद्धा का शुद्धा शुद्ध भाव है उतार चढ़ाव रूप चिन्ता मे बढ़ जाने पर तो अरे आज ही छोड़ कर भाग इस धंधे को इससे बड़ा अहित और कुछ नहीं हो सकता ऐसा सा भाव प्रगट हो जाना। और चिन्तायें कुछ कम हो जाने पर तथा विषयो की उपलब्धि हो जाने पर यह भाव दबसा जाना उपरोक्त प्रकार प्रगट न हो पाना और इस प्रकार बराबर उसको दृढ़ता में हानि वृद्धि होते रहना श्रद्धा का शुद्धा शुद्ध भाव है।

नोट—श्रद्धा का शुद्धा शुद्ध भाव छदमस्थ जीव के ज्ञान गम्य नहीं होता तो भी गलत दृष्टांत देना उचित नही। श्री रामचन्द्रजी सीता के लिये आकुल व्याकुल होते थे तो क्या वह भाव उनका श्रद्धा का शुद्धा शुद्ध भाव ? कदापी नही। वह तो चारित्र का दोष है श्रद्धा का नही। चारित्र का दोष श्रद्धा में दीखाना यथार्थ मार्ग नही ? इसका इतना ही जबाब है कि

जो भी ज्ञान मे पूर्ण अन्धकार होते है यह कहना केवल वाक्य जाल है। स्वद पृष्ठ १३५ पंक्ति ७ पर लिखते हैं कि कोई भी जीव ऐसा नही जिसमें ज्ञान पूर्ण रूपण दब गया हो अर्थात शत प्रतिशत अन्धकार हो। निगोदिया तक मे भी १ प्रतिशत प्रकाश प्रगट रहना अवश्य है। मनमानी लिखना बोलना उसे ही वाग्‌ जाल कहा जाता है।

१६—पृष्ठ १२६ पंक्ति १७ चारित्र का पूर्ण शुद्ध भाव है पूर्ण वीतरागता जैसा कि अर्हन्त व सिद्ध भगवान मे है। उसका पूर्ण अशुद्ध भाव है विषयों मे पूर्ण रूपेण फंसकर नित्य क्रोधादि भावों मे उलझे रहना। जैसा की जन साधारण मे होता है। इसका शुद्धा शुद्ध भाव है राग मे रहते हुए भी वीतरागता का अभ्यास करने रूप। जैसे कि गृहस्थ मे रहते हुए भी कुछ कुछ व्रतों का धारना व विषयों का कुछ त्याग करना।

मान होने पर अरे अरे ? यह मेरे लिये हितकर है यह अन्य सब तो मेरे शत्रु हैं, इस प्रकार का भाव जागृत होकर भी अन्य काम धन्धों में फसने पर भूल जाना यह क्षणिक पूर्ण भाव है । और अर्हन्त भगवान मे प्रगटी वीतरागता अब कभी नष्ट न होगी यह स्थायी पूर्ण शुद्ध भाव है ।

नोट–क्षणिक शुद्ध भाव और स्थायी पूर्ण भाव मे कुछ भी अन्तर नहीं है । दोनों समान वीतराग है । वीतरागता मे कुछ अन्तर नही किन्तु क्षणिक वाला गीर जाते है और स्थायी वाला नित्य रहते है इतना ही अन्तर है । किन्तु क्षणिक-वाला संसारी धंधों में फंस जाते है, ऐसा उपशान्त वीतराग ग्यारहवे गुण स्थान का स्वरूप नही है, ऐसी दशा तो सातवे गुण स्थान में भी नही होती तब ग्यारहवे गुणस्थान में कैसे हो जावेगी ? कितना गलत दृष्टांत है यहीं वाक्य जाल है । उटपटांग कथन करना ही वाक्य जाल है ।

२०–पृष्ठ १०८ पक्ति ६ आगम भाषा मे क्षणिक शुद्ध भाव को औपमिक भाव कहते है । स्थायी पूर्ण शुद्ध भाव को क्षायिक भाव कहते है । पूर्ण अशुद्ध भाव को औदयिक भाव कहते है । और शुद्धाशुद्ध भाव को क्षयोपशम भाव कहते है । यह चारोंय भाव

२१—पृष्ठ १२६ पंक्ति ४ सों औदयिक भाव तो अनादि शान्त है। तथा सादी सान्त भो है। और क्षयोपशम भाव सादो सान्त व अनादी शान्त दोनों है। औपशयिक भाव सादी शान्त है क्षायिक भाव सादा अनन्त है। ज्ञान का क्षयोपशम भाव अनादी शान्त है और शेष गुणों का सादी शान्त है।'

नोट—औदयिक भाव तीन प्रकार से हो सकता है। १ अनादी अनंत २ अनादी शान्त ३ सादो शान्त। अभव्य जीव की अपेक्षा एवं दूरान दूर भव्य की अपेक्षा अनादी अनन्त। सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा अनादी शान्त तथा सादो शान्त। अनादी अनंत नहीं लीखना केवल वाक्य जाल है। क्षयोपशम भाव सादी शान्त अनादी शान्त तथा अनादी अनन्त भी रहते है। अभव्य एवं दूरान दूर भव्य में क्षयोपशम भ.व अनादी अनन्त है। ज्ञान गुण का क्षयोपशमिक भाव अनादी शान्त है और शेष गुणों का सादी शान्त है- यह भी वाक्य जाल है। ज्ञान गुण दर्शन गुण, वीर्य गुण का क्षयोपशम भाव अनादो अनन्त और अनादी शान्त हैं। श्रद्धा गुण और चारित्र गुण का क्षयोपशम भाव सादी शान्त ही होते है। और गुण में क्षयोपशम भाव होते हो नहीं तो भी शेष गुण में क्षयोपशम भाव

अनुभव मे आने वाली व्यक्ति या पर्याय है। क्योंकि उत्पन्न होती तथा विनाश पाती हैं। चारो ज्ञानादि गुणो मे यथायोग्य रीतय. इन चारो भावो में से सारेय या कुछ पाये जानें सम्भव हैं। चारित्र व श्रद्धा तो क्षायिक औपशमिक औदयिक व क्षयोपशमिक चारों प्रकार से रह सकती है पर ज्ञान व वेदना या सुख केवल तीन प्रकार से। वे औपशमिक नही होते।

नोट—ज्ञान गुण में औदयिक भाव कभी नही होते। यदि हो पावे तो आत्मा जड बन जावे। ससारी सब जीव मे ज्ञान का क्षयोपशम भाव है और केवली भगवान में क्षायिक भाव होते है। खुद पृष्ठ १२६ पर लिखते है कि ज्ञान का क्षयोपशम भाव अनादि शान्त है तब वहाँ औदयिक भाव कैसे हो सकते है ? तो भी ज्ञान मे तीन भाव लिखना केवल वाक्य जाल है। वेदना या सुख मे तीन भाव लिखना वाक्य जाल है। वेदना कहो या चारित्र कहो दोनों एक अर्थ वाची है। वेदना मे भी चारेय भाव हो जाते है। पूर्ण अशुद्धता औदयिक भाव से पहेले दूसरे गुणस्थान में। शुद्धाशुद्ध भाव तीसरे गुणस्थान से दशवा गुणस्थान तक। क्षणिक शुद्धता ग्यारहवे गुणस्थान में और स्थायी शुद्धता बारहवे गुणस्थान में होती है।

है और उत्पन्न ध्वंसी पर्याय है। अब सोचीये कर्ता को भाव बोलना उचित है या कर्म को भाव बोलना उचित है। ज्ञान दर्शन चारित्र श्रद्धा आदि गुणों कर्ता है और उनका परिणमन अवस्था पर्याय कर्म है। ज्ञान गुण क्षयोपशम भाव से व्यय हुवा और क्षायिक भाव से उत्पन्न हुवा। वहाँ परिणाम मे भाव शब्द का प्रयोग होगा या परिणामी रूप कर्ता मे ? देखिये गाथा पंचास्ति काय की नं० ५३-५५

जीवों अनादि अनन्त सान्त अनंत है जीव भाव से
सदभाव से नहीं अन्त होय प्रधानता गुण पांच से।
परिणाम उदय क्षयोपशम उपशम क्षये संपुक्तजे।
वह पांच गुण जानना बहु भेद मै विस्तीर्ण है।

देखिये यह पाच भाव पर्याय रूप है तो भी परिणामिक भाव को परिणाम नही मान कर परिणामी मानना उचित है ? यह पांचोय भाव उत्पन्न ध्वंसी रूप है। तो भी पारिणामिक भाव पर यह चार भाव नृत्य करते है वह लीखना कहां तक उचित है। जीवत्व जीव का लक्षण है। लक्षण गुण का नाम नहीं है पर्याय का नाम नहीं है किन्तु गुण पर्याय के पीन्ड रूप वस्तु का द्रव्य को पीछानने कर जो चिन्ह वह लक्षण है वह नित्य है उसे पारिणामिक भाव बोलना

सादी शान्त होते है वह सोचना केवल शब्द जाल है।

२२–पृष्ठ १२६ पक्ति ६ क्योंकि इन चारों [भावो] मे आदी व अन्त की अपेक्षा ये पड़ते है इसलिए उन्हे उत्पन्न ध्वसी भाव कहा जाता है। इसी से यह पर्याय रूप है शक्ति सामान्य रूप या गुण रूप नही है।' 'पृष्ठ १३० पक्ति ५ क्षायिक आदि चार भावों को समझ लेने के पश्चात उस भाव को प्रमुखत समझना योग्य है जिसके ऊपर कि यह चारोंय भाव नृत्य कर रहे हैं। उसे पारिणामिक भाव कहते हैं। सो त्रिकाली वस्तु का स्वभाव समझना।

नोट–प्रथम भाव कर्ता का नाम है या कर्म का नाम है यह विचारना बहुत ही जरूरी है। कर्ता किस किस भाव से परिणमन करता है उसी परिणमन रूपी कर्म का नाम भाव है किन्तु कर्ता को भाव कहना उचित नही है। परिणामी और परिणाम। परिणामी कर्ता है और परिणाम कर्म है। कर्म हमेशा उत्पन्न ध्वसी ही होते है किन्तु परिणामी उत्पन्न ध्वंसी नही होते वह तो ध्रौव्य रूप ही होते है। तव तो सत् का लक्षण उत्पाद व्यय ध्रौव्य बन पावेगा। नित्य कर्ता

रूप है या नही ? श्रद्धा गुण को पारिणामिक बोलना उपचार है क्योंकि वह तो कर्ता है कर्ता के परिणाम या कर्म को ही भाव बोला जाता है। कर्ता नित्य रहते भी समय समय में परिणमन करते है वह परिणमन यथार्थ मे भाव है। पारिणामिक भाव भी उत्पन्न ध्वंसी है।

२४–पृष्ठ १३५ पंक्ति ७ कोई भी जीव ऐसा नहीं जिसमें ज्ञान पूर्ण रूपेण दब गया हो अर्थात सत प्रतिसत अन्धकार हो। निगोदिया तक में भी १ प्रतिसत प्रकाश प्रगट रहता अवश्य है भले वह कुछ कार्य कारी हो या नही हो। ज्ञान मे ही यह नित्य व्यक्ता व्यक्तपने को बात लागू होती है अन्य गुणों मे नही।

नोट–पूर्ण रूप दबने का नाम औदयिक भाव है पूण अन्धकार किन्तु ज्ञान गुणों में पूर्ण अन्धकार अर्थात औदयिक भाव होते ही नहीं किन्तु क्षयोपशम भाव अंश मे उघाड़ अश में ढका हुआ रहते है। वह स्वयं स्वीकार करते है तो भी ज्ञान मे औदयिक भाव बताना लिखना वाक्य जाल नहीं तो क्या है। मात्र ज्ञान गुण मे ही नित्य व्यक्ता व्यक्तपने की बात लागु होती है। ऐसा हो नही है किन्तु दर्शन गुण और वीर्य गुण में नित्य व्यक्ता व्यक्त रहता है तो भी केवल ज्ञान गुण

वह एक समझाने की रीत है यथार्थ में जो परिणमन करते हैं ऐसा कर्ता का परिणाम या कर्म ही भाव है जो उत्पन्न ध्वंसी है। इसी प्रकार पारिणामिक भाव भी उत्पन्न ध्वंसी है। पारिणामिक भाव का व्यय पारिणामिक भाव की उत्पत्ति और अस्तित्व गुण ध्रौव्य। अस्तित्व यह कर्ता है किन्तु उसकी समय समय की पर्याय वह कर्म है वह परिणाम है। इससे सिद्ध हुवा की परिणाम, कर्म, पर्याय, हालत, वह भाव है वह भाव एक समय में यह पांच में से ही एक होगा एकी साथ में दो भाव नही हो सकते हैं क्योंकि पर्याय एक समय की ही होती है।

२३—पृष्ठ १३२ पंक्ति १ पारिणामिक भाव में हानि वृद्धि शुद्धि अशुद्धि नहीं होती अतः त्रिकाल शुद्ध है। इसमे शादी अनादि पनें की विपक्षा भी नहीं होती अत यह कोइ पर्याय (कर्म) तो है ही नही।

नोट—दूसरे गुणस्थान में श्रद्धा गुण पारिणामिक भाव से मिथ्यात्व रूप परिणमन करते हैं जब वह मिथ्यात्व गुणस्थान में आते है तब श्रद्धागुण पारिणामिक भाव का व्ययकर औदयिक भाव से मिथ्यात्व रूप परिणमन करते वहाँ पारिणामिक भाव सादी शान्त हुवा था नही ? वहाँ पारिणामिक भाव पर्याय

दोनों प्रकाश अन्धकार मिला हुवा ही क्षयोपशम है जिससे संसारी जीव मे ज्ञान क्षयोपशन भाव से और केवली भगवान मे क्षायिक भाव से ऐसे दो भाव से हो रह सकता है तीन भाव से नही । तो भी तीन भाव लोखना केवल वाक्य जाल हैं ।

२५–पृष्ठ १३६ पंक्ति २० इन सब उपरोक्त भावो से अतीत वह शान्ति का त्रीकाली भाव जिसमे मे कि यह क्षायिकभाव रूप शान्ति व ज्ञान व्यक्त हुए है । यदि यह न होता तो यह व्यक्ति कहाँ से प्रगट होती इस अनुमान पर जो जाना जाता है चारों भावो मे जो व्याप्त है आत्मा की सब ही अवस्थाओ में जो रहता है । जो न तो औदयिक भाव से विनिष्ट हो होता और न क्षायिक भाव मे नवीन जागृत हुआ है जिसमे उत्पत्ति व विनाश का प्रसग हो नही ऐसा शान्ति व जानने पने का सहज स्वभाव पारिणामिक भाव है । आपके असंख्यात प्रदेश सामान्य जिसमें आकार की कोई अपेक्षा नही पर जिनके आधार पर आकार व्यक्त होता है आपका पारिणामिक भाव है ।

नोट—जो परिणामी हैं अर्थात जो परिणमन करते है जिसको हम गुण या द्रव कहते हैं उनको ही पारि-णामिक भाव मानते हैं । अर्थात ज्ञान गुण मति श्रुतादि

मे ही रहता है वह लोखना वाक्य जाल है। दर्शन गुण की अचक्षु रूप पर्याय सब जोव मे होती है। उसी प्रकार वीर्य गुण की अंश मे प्रगटता नित्य रहती है। देखिये और क्या लिखते है। वही पन्ना १३४ पक्ति १८ पर जितने अश मे ज्ञान प्रगट व्यक्त है वह उस ज्ञान गुण का क्षयोपशमिक भाव है और जितने अश मे व्यक्ति का अभाव है या अन्धकार उतने अश में उनका औदयिक भाव है।

नोट—यह कितनी बडी गलति है। शुद्धा शुद्ध दोनो मिलकर हो मिस्र भाव होता है केवल शुद्धता का नाम मिस्र अर्थात क्षयोपशम नही है। यहा क्षयोपशम भाव में टुकडा कर डाला। जहाँ क्षयोपशम भाव है वहाँ उसी समय मे वही गुण मे औदयिक आदि भाव नही हो सकते ? चारोय भाव स्वतत्र अलग अलग है। यह भूल के कारण लिख दिया को इसीलिये प्रत्येक ससारी जीव मे ज्ञान के क्षयोपशमिक और औदयिक दोनो भाव विद्यमान रहते हैं। ज्ञान का पूर्ण औदयिक भाव किसी में भो नही होता है इसलिये ससारी जोवो मे तीन भाव का सद्भाव बताया है।

नोट—औदयिक रूप पूर्ण अशुद्ध अंधकार है वहां कणी का भी शुद्धता या प्रकाश कैसे रह सकते है।

जीवो अनादि अनन्त सान्त अनन्त है जीव भाव से।
सद्भाव से नहीं अंतहोय प्रधानता गुण पाँच से।

गुण का नाश नहीं होता किन्तु वह गुण पर्याय से पाँच भाव से ही परिणमन करते है तो भी एक समय एक ही भाव होगा एक समय में दो भाव नही यह आचार्य देव का अभिप्राय है। पारिणामिक भाव पर की अपेक्षा नही रखता है वह इसकी विशेषता है। जिस परिणमन में निमित्त का सद्भाव अथवा अभाव कारण नही पडते आपसे आप वह भाव होते है जिसका स्वभाव से परिणमन किया ऐसा बोलना लोक व्यवहार है। किन्तु औदयिकादिचार भाव कर्म की अपेक्षा नियम से रखते है। कहा भी है कि पंचास्तिकाय गाथा ५८।

पुद्गल कर्म बिना जीव के उपशम उदय क्षायिक और
क्षयोपशमिक न होय जिससे वह कर्मकृत भाव है।

यह चार भाव में कर्म कारण पड़ते है किन्तु पारिणामिक भाव बिना अन्य कारण से आपसे आप होते है। वह पर्याय है अर्थात कर्म है किन्तु यह कर्ता अर्थात परिणामी नहो है।

२६–पृष्ठ २०२ पंक्ति १ वस्तु के भेद व अभेद दो भागो मे से किसी भी एक की प्रयोजन वश मुख्य

का पारिणामिक भाव है। दर्शन चक्षु अचक्षु आदि का गारिणामिक भाव है। चारित्र-राग-वीतराग का पारिणामिक भाव है। श्रद्धा मिथ्यात्व सम्यग्दर्शन का पारिणामिक भाव है यथार्थ मे यह गुण का नाम पारिणामिक भाव नही है किन्तु गुण की पर्याय का नाम पारिणामिकादि पाँच भाव है। जैसे श्रद्धागुण पहले गुणस्थान में औदयिक भाव से परिणमन करती है। वही श्रद्धागुण दूसरे गुणस्थान मे पारिणामिक भाव से परिणमन करती है वही श्रद्धागुण चौथे गुणस्थान मे औपशमिक भाव से या क्षयोपशमिक भाव से या क्षायिक भाव से परिणमन करती है। अव विचारो ये गुण पारिणामिक भाव है या गुण की एक समय वर्तीपर्याय पारिणामिक भाव है। यदि गुण को ही पारिणामिक भाव माना जावे तो जितने आत्मा मे गुण है इतना ही पारिणामिक भाव है किन्तु ऐसा नही है। आत्मा के अनन्त गुण मे से तीन ही गुण श्रद्धा चारित्र और क्रिया गुण अशुद्ध पारिणामिक भाव से परिणमन कर सकते है और नहो। सब गुण शुद्ध पारिणामिक भाव से परिणमन कर सकते है किन्तु अशुद्ध नही। इसो अपेक्षा मे ही पर्याय रूप पारिणामिक भाव माना है।

समय दूसरा नय गौण होगा। किन्तु नहीं है ऐसा नही। यदि नहीं है ऐसा माने तो एकान्त मिथ्यात्व है। यदि अध्यात्म में सर्वत्र द्रव्यार्थिकनय ही प्रधान रहता है पर्यार्यथिक नय का सदा निषेध किया जाता है यह बात नहीं है वह गौण होता है। देखिये नियमसार ग्रन्थ गाथा १६-४६ समयसार गाथा १६।

पूर्वोक्त पर्यायों से है व्यतिरिक्त जीव द्रव्यार्थि के।
और युक्त पर्यायों से है संयुक्त पर्यायार्थि के॥
यह सर्व भाव कहेल व्यवहार नय के आश्रयं।
संसारी जीव समस्त सिद्ध स्वभावी शुद्ध नयाश्रये॥
वर्णादि गुणस्थान भावो जीव के व्यवहार से।
किन्तु कोय यह भाव नही आत्म का निश्चय से।

यह गाथा की अपेक्षा से सम्यग्दर्शन वीतरागता केवल ज्ञान, केवल दर्शन, अनन्त वीर्यादि जीव के निश्चय से नहीं है संसार मोक्ष भी जीव का नही है। तब व्यवहार निषेध करने से क्या रहया ? कुछ नही आनन्द करो। सिद्ध का सुख मिल जावेगा। यह सब भाव व्यवहार से ही आतमा का है जो परम सुख का ही कारण है सुख रूप है। यह सब कथन शैलो है फस मत जाना। यदि फस गया तो मोक्ष तो दूर है स्वर्ग भी मिलेगा नही केवल नरक निगोद का ही

करके उस समय दूसरे भाग को गौण करना मुख्य गोण व्यवस्था कहलाती है। पक्ति १७ पर लिखने है कि तात्पर्य यह है कि आगम पद्धति मे तो कभी द्रव्यार्थिकनय ग्राह्य हो जाता है और कभो पर्यायथिकनय पर अध्यात्म मे सर्वत्र द्रव्यार्थिकनय ही प्रधान रहती है पर्यायर्थिकनय या व्यवहार नय का सदा निषेध किया जाता है।

नोट—द्रव्य मे दो शक्ति है। १ नित्य शक्ति और दूसरा अनित्य शक्ति। नित्य शक्ति को गुण या द्रव्य कहते है और अनित्य शक्ति को पर्याय कहते है। दो शक्ति मिल कर ही सत् कहा जाता है। सत् का लक्षण उत्पाद व्यय ध्रौव्य है। उनमे से एक शक्ति को स्वीकारना और दूसरी शक्ति को छोड़ देना उसी का नास एकान्त है दोनो को स्वीकार करना अनेकान्त है। नित्य शक्ति का कथन करने वाला निश्चयनय है अर्थात द्रव्यार्थिकनय है अनित्य शक्ति का कथन करना व्यवहार नय है अर्थात पर्यायथिक नय है। दोनों नय को ग्रहण करना प्रमाण ज्ञान है। प्रमाण ज्ञान का नाम सम्यक् ज्ञान है। जीव तत्व निश्चय नय का विषय है और अजीव आदि छह तत्त्वो व्यवहार नय का विषय है। एक समय मे एक ही नय का कथन होगा उसी

श्रीमान पंडित हीरालाल जी जैन सिद्धान्त शास्त्री ने एक संग्रह ग्रन्थ सम्पादक किया है। उग-नीस शास्त्र में से यही संग्रह किया है। जिसमें ७३८ गाथा है चौदह अध्याय है। ३१६ पन्ना का ग्रन्थ है जिसका नाम जैन धर्मामृत है जो भारतीय ज्ञान पीठ काशी से प्रकाशित हुवा है। वह ग्रन्थ देखने का सौभाग्य मिला। प्राय कर मे आर्य ग्रन्थ का ही स्वाध्याय करता हूँ। संग्रह ग्रन्थ में मेरी रुची बहुत हो कम रहती है। मूल श्लोक तो आचार्य का ही लिखा है उनमें प्रश्न उठने का कोई प्रयोजन ही नहीं है किन्तु भावार्थ श्रीमान पडित जी का ही लिखा है जिसमे कुछ बात समझने मे नही आने से वह प्रश्न रूप से श्रीमान पंडित जी को बीयावर भेज कर प्रार्थना की कृपया खुलासा अवश्य करे। श्रीमान पडितजी का पत्र भी आया कि प्रश्न बहुत है जिससे टाईम लगेगा। १५ दिन में खुलासा अवश्य भेज

पात्र वह बनते है ऐसे जीव को निश्चया भानी मिथ्या दृष्टि कहते है ।

द्रव्य दृष्टि मे पर्याय नही है किन्तु पर्याय दृष्टि मे वह अवश्य है । किन्तु नहीं है ऐसा नहीं है । नित्य शक्ति में अनित्य शक्ति का अभाव है वैसे ही अनित्य शक्ति मे नित्य शक्ति का अभाव है । प्रमाण से दोनों शक्तिया है । यही सम्यक् ज्ञान है ।

नोट—धन का मिलना न मिला अन्तराय कर्म का काय नहो है। वह साता असता, कर्म के उदय का कार्य है। अन्तराय वीर्य गुण को घात करता है। अन्तराय कर्म के क्षयोपशम से वीर्य गुण की शक्ति बढ़ती है और अन्तराय कर्म के उदय से वीर्य गुण की शक्ति हीन होती है। दूसरी बात अन्तराय कर्म घाति कर्म है और घाति कर्म सब पाप रूप है उनसे धन कैसे मिल सकते है ? जिसका अन्तराय कर्म का नाश हो गया ऐसा तीर्थंकर केवली को समवसरण की विभूति मिलती है और दूसरे सामान्य केवली को गंध कुटि बनती है यह अन्तराय कर्म का फल नहीं है किन्तु साता असाता वदेनीय का ही फल है। ऐसा मानना यथार्थ है। मद करना या नही करना वह पुरुषार्थ के ही आधानो है कर्म के आधोन नही है।

२—पृष्ठ ७६ गाथा ६८

गाथा का अर्थ—जिस प्रकार निमल दिन के पश्चात मलीमस (अन्धकार-व्याप्त) रात्रि आती है उसी प्रकार इस प्रथमबार प्राप्त हुए सम्यक्त्व के पश्चात नियम से मिथ्यात्व का उदय आ जाता है।

भावार्थ—प्रथमवार प्राप्त हुए औपशमिक सम्य-ग्दर्शन के पश्चात नियम से मिथ्यात्व कर्म का उदय

दूँगा। मेने धन्यवाद का पत्र लिखा। एक मास दो मास व्यतीत हो जाने से प्रार्थना रूप पत्र भेजा की खलासा करने की अवश्य कृपा करे। जवाब आया ही नही और दो पत्रो भेजा किन्तु जबाब आया ही नही। मनुष्य को भूल दिखाने से दुःखी हो जाते है कि मेरी भूल निकाली ? यही संसार की जड है। ज्ञानी को भूल दिखाने से आनन्द मानते है यही दानो मे विशेषता है। वह प्रश्न पाठक को विशेष लाभ रूप होगा यही समझ कर लिख रहा हूँ ! साथ मे उनका यथार्थ खुलासा भी दिखाया जाता है।

१—धन मद न करने का उपदेष। यह गाथा प्रशमरति प्रकरण की है। जो श्वेताम्बर ग्रन्थ है।

उदयोपशम निमित्ती लाभा लाभाव नित्य को मन्त्वा ना लाभे वैक्ल व्यं न च लाभे विस्मयः कार्य ॥४५ ।प्र २

अर्थ—लाभान्त राय कर्म के क्षयोपशम से अर्थ का लाभ होता है और लाभान्त राय कर्म के उदय से अर्थ का अलाभ या धन की हानि होती है। अतएव लाभ नित्य नही है और अलाभ भी नित्य नही रहने वाला है ऐसा मान कर अलाभ में विकल नही होना चाहिये और लाभ के होने पर विस्मय (गर्व) भी नही करना चाहिये।

हो जाते है। दूसरे गुणस्थान मे सम्यग्दृष्टि नहीं है।

४–पृष्ठ १८३ पंक्ति ७ गाथा १५-१६ सूक्ष्म साम्यराय गुणस्थान का स्वरूप

भावार्थ–मोह कर्म के क्षय करने की जिस जीव के योग्यता नही होती है जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि नही होता है वह उपशम श्रेणी चढ़ता है।

नोट–उपशम श्रेणी क्षायिक सम्यग्दृष्टि एवं उपशम सम्यग्दृष्टि दोनो चढते है किन्तु क्षपक श्रेणी केवल क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही चढ़ते है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशम श्रेणी चढ़ते नहीं है वह लीखना यथार्थ नहीं है।

५–पृष्ठ १८५ पंक्ति २ गाथा १८ क्षीण मोह गुणस्थान का स्वरूप

भावार्थ–जब ग्यारहवे गुणस्थान का समय पूर्ण हो जाता है तब वह नियम से नीचे गीर जाता है क्योकि उसके फिर नियम से मोह कर्म का उदय आ जाता है। और इसी कारण वह ऊपर चढ़ने में असमर्थ रहता है। नीचे गिरता हुआ वह छठे सातवे तक आ जाता है। वहाँ यदि वह पुन. प्रयत्न करे और क्षायिक सम्यग्दृष्टि बनकर क्षपक श्रेणी पर चढ़े तो वह दसवे गुणस्थान से एकदम बारहवे में पहुँच कर

आता है और वह औपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव पुनः मिथ्यात्व रूप पाताल में गिरकर डुब जाता है। किन्तु उसके पश्चात प्रयत्न करने पर उस जीव को औप-शमिक सम्यक्त्व की प्राप्ति फिर भी हो सकती है।

नोट—जिस जीव की पास में सम्यगमिथ्यात्व और सम्यग प्रकृति की सत्ता मोजुद है उस जीव को प्रथमो उपशम नही होते है किन्तु सम्यगमिथ्यात्व का उदय हो जावे तो तीसरा गुणस्थान स्वयं हो जाता है और सम्यग प्रकृति का उदय हो जावे तो क्षयोपशम सम्यग दर्शन स्वयं हो जाता है। यदि दोनो प्रकृति सत्ता में न रहे तब ही प्रथमोपशम सम्यगदर्शन तोन करण कर करना पडता है।

३—पृष्ठ १७४ पंक्ति ५ गाथा ४ अध्याय ६ सासादन गुणस्थान का स्वरूप की गाथा है।

भावार्थ—इस गुणस्थान मे जीव अधिक से अधिक छह आवालो काल तक रहता है उसके पश्चात वह नियम से मिथ्यादृष्टि हो जाता है।

नाट—दूसरे गुणस्थान मे भी जीव मिथ्यादृष्टि हो है किन्तु वहाँ मिथ्यात्व कर्म का उदय नही है जिससे प रिणामिक भाव से मिथ्यादृष्टि ही है। बाद मे मिथ्यात्व गुणस्थान मे औदयिक भाव से मिथ्यादृष्टि

प्रदह्मा घाहि कर्म्माणि शुक्लध्यान कृशानुना ।
ऽयोगो याति शीलेशो मोक्ष लक्ष्मी निरास्त्रवः ॥२०॥

गाथा का अर्थ–जब तेरहवे गुणस्थान के काल में एक अन्तमुहूत प्रमाण समय अविशिष्ट रहता है तव शुल्कध्यान रूपी अग्निके द्वारा वेदनीय आयु नाम और गौत्र इन चार अघातिया कर्मों को भी भस्म करके अठारह हजार शाल के स्वामी बन कर तथा सर्व प्रकार के कर्मास्त्रव से रहित होकर एक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण योग रहित अवस्था का अनुभव करते हैं उस समय वे अयोगि केवली कहलाते है । इस गुणस्थान का काल समाप्त होने पर वे मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त हो जाते है अर्थात मुक्त या सिद्ध बन कर सिद्धालय में जा बिराजते है ।

नोट–तेरहवे गुणस्थान के काल में एक अन्तर्मुहूर्त काल बाकी रहते है तब वहां बादर योग का अभाव कर शुक्ष्म योगी बनते है बाद में शूक्ष्म योग का अभाव और चौदहवे गुणस्थान की प्राप्ति होती है किन्तु तेरहवे गुणस्थान में वेदनीय आयु नाम गौत्र कर्म को भस्म नही करते है वह तो बाकी रहते है उनका नाश तो चौदहवे गुणस्थाने के अन्त के समय में ही होते है तो भी तेरहवे गुणस्थान में उनका भस्म लिख

क्षीर्ण मोहो वीतरोग वन जायगा।

नोट—मोहनीय कर्म का उदय दशवे गुणस्थान मे आते है ग्यारहवे गुणस्थान मे नही। ग्यारहवे गुण स्थान से पारिणामिक भाव से ही गिरता है और दशवे आते ही क्षयोपशम भाव हो जाता है। दूसरी बात क्षयक श्रेणी चढ़ना या उपशम श्रेणी चढना वह पुरुषार्थ के हाथ की बात नही है वहा तो स्वय कर्म उसशंम हो जाते है या स्वय क्षय हा जाते है। तीसरी बात क्षायिक सम्यग्दृष्टि भी उपशम श्रेणी चढता है तब क्षायिक सम्यग्दृष्टि बन कर क्षपक श्रेणी चढना यथार्थ नही है। उपशम श्रेणी चढना या क्षयक श्रेणी चढनार जीव के उपादान में अन्तर नही है उपादान समान होते कोई जीव का कर्म उप-शम हो जाते है और कोई जीव का कर्म क्षय हो जाते है। यदि उपादान की शक्ति होती तो कोई जीव उपशम श्रेणी चढते ही नही किन्तु वह उपादान की शक्ति बहार की बात है। उपशम भाव ओर क्षायिक भाव मे उपादान मे अन्तर नही है केवल निमित्त मे ही अन्तर है।

६—पृष्ठ १८६ गाथा २० अयोगि केवली गुण-स्थान यह श्लोक पच सग्रह का १-५० का है।

चास की भावना नहीं थी किन्तु ऐसे कारण पड़ने से जो भावना होती है वही भाव का नाम अकाम निर्जरा है।

७–पृष्ठ २१५ गाथा ४१-४४ तीर्थंकर प्रकृति के आस्रव के कारण—१ सम्यग्दर्शन की परम विशुद्धि होना सो प्रथमदर्शन विशुद्धि भावना।

नोट–सम्यग्दर्शन सवर भाव है उनसे आस्रव कैसे हो सकते है ? दूसरी बात क्षायिक सम्यग्दर्शनमें विशुद्धता क्या होनी है ? सम्यग्दर्शन की साथ में तत्त्व विचार के जो राग है उसी राग को दर्शन विशुद्धि कहते है वही राग से तीर्थंकर प्रकृति का आस्रव हो सकते है। सम्यग्दर्शन से नही।

८–पृष्ठ २४६ गाथा ४-५ निर्जरा के स्वरूप भेद

अर्थ–इनमे जो विपाकजा निर्जरा है यह समस्त ससारी जीवो के पाई जाती है किन्तु जो दूसरो अविपाकजा निर्जरा है वह तपस्वी साधुओं के ही होती है।

नोट–मूलगाथा मे "तपस्विनाम" शब्द है उनका अर्थ तपस्वी साधुओं करनां योग्य नही है किन्तु दूसरी निर्जरा तप से होती है। यह तप गृहस्थ करे, व्रती श्रावक करे, या साधु करे। जो तप करेगे उसको अविपाक निर्जरा होती है। अज्ञानी जीवो को भी बालतप

दिया उचित नही है। चौदहवे गुणस्थान के पहले समय में निरास्रव होते है। अठारह हजार शील के स्वामी बन जाते है तो भी वहा चौदहवा गुणस्थान के काल बाकी है वह काल पूर्ण होते ही चार अघाति कर्मों का नाश होते ही मोक्ष तत्व की प्र.प्ति हाती है।

७–पृष्ठ २१३ गाथा ३४-३५ नौवा अध्याय देवायु के आश्रव का कारण की गाथा है।

भावार्थ–बिना इच्छा के परवश हो भूख प्यास आदि की बाधा सहन करने से जो कर्म निर्जरा होती है उसे अकाम निर्जरा कहते है।

नोट–बिना भाव से अकाम निर्जरा कैसे हो जावेगी ? यह अकाम निर्जरा के स्वरूप नही है। जैसे उपवास करने की भावना नही है और रस्ते मे चलते पोलीस ने पकड़ लिया। वहा से कब छुटेगा ऐसा निश्चित नही है तब विचार किया आज का उपवास ही कर लो ? ऐसे भाव से निर्जरा होती है वह अकाम निर्जरा है और प्रथम से ही विचार किया है कि आज का उपवास करना ही है ऐसे भाव से जो निर्जरा होती-है -वह सकाम निर्जरा है। भाव मे महान अन्तर है। य द पुलीस पकड़ती नही तो उप-

वाला (७) उपशान्त कषाय वीतराग (८) क्षपक श्रेणी चढने वाला (९) क्षीण कषाय वीतराग (१०) धातियां कर्मो से रहित जिन भगवान ये दश प्रकार के जीव क्रम से असख्यात गुणी कर्म निर्जरा करते है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि जीव के जितनी कर्म निर्जरा होती है उससे असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा श्रावक के होती है। श्रावक से असख्यात् गुणी कर्म निर्जरा मुनिराज को होती है इस प्रकार आगे आगे क्रम जाननाँ। इस असख्यातगुणी कर्म निर्जरा का कारण आगे आगे के स्थानों मे चित की परम विशुद्धि और सयम का होता है।

नोट—तीसरा नम्बर की निर्जरा मुनिराज की होती है उससे विशेष चित की शान्ति चोथा गुणस्थान वाला अनन्तानुबन्धी कषाय का विसंयोजन करने वाले को कैसे होगी ? इनसे विशेष कर्म निर्जरा दर्शन मोहनीय कर्म के क्षय करने वाले चोथा गुण स्थान वर्ती जीव को चित की परम विशुद्धि कैसे होगी ? मुनिराज को एक कषाय का वन्ध होता है जब चौथा गुणस्थान वाले क्षायिक सम्यग्दृष्टि को तीन कषाय का वन्ध पडते है। उसी प्रकार सातवे नंबर वाले उपशान्त कषाय वीतराग की परम चित की विशुद्धता है या

इसे अविपाक निर्जरा होती हे किन्तु अज्ञानी को भाव निर्जरा नही होती है। यहाँ तो कर्म निर्जरा का ही वणन है भाव निर्जरा का वर्णन नही है। यदि केवल तपस्वी साधुओं को ही निर्जरा होवे तो क्या अन्य गृहस्थ को न होवे ऐसा अर्थ नहीं है।

९—पृष्ठ २५४ पक्ति १७ गाथा २९ का उपसहार-उक्त चारो प्रकार केधर्म ध्यानो से 'पूर्व संचित कर्मो की निर्जरा होती है और परम आत्मिक शान्ति प्राप्ति होती है। इसलिये ज्ञानी जनो को सदा धर्म ध्यान रूप प्रवृत्ति रखना चाहिये।

नोट—आत्म शान्ति निवृति से होती है या प्रवृति से ? प्रवृति आकुलता की जननी है निवृति शांन्ति की जननी है। ज्ञानी जीवो को निवृती करनी चाहिये या प्रवृति ? धर्म ध्यान मोक्ष का कारण है और प्रवृति स्वर्ग का कारण है जो राग अश है वह शान्ति मार्ग की बाधक है यही विचार निरतर रखना चाहिये।

१०—पृष्ठ २५८ पक्ति १५ गाथा ३१-३२-३३ कर्मो की निर्जरा के क्रम-(१) सम्यग्दृष्टि (२) सयता-संयत श्रावक (३) सयमी मुनिराज, (४) अनन्तानुबन्धी कषाय का विसंयोजन करने वाला (५) दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय करने वाला (६) उपशम श्रेणी चढने

भाव है वह बात पूर्व प्रयोग कहने से कहाँ बनती है। यथ र्थ में अशुद्ध पारिणानिक भाव से जीव लोक के अग्र भाग जाता है और शुद्ध पारिणामिक भाव से वहाँ ही स्थिर हो जाता है। पारिणामिक भाव अन्य निमित्त स्वीकार करते हैं नही है।

१२—पृष्ठ १६३ पंक्ति १० गाथा ३४

उदयास्तोमय त्यक्त्वा त्रिनाडी भोजनम् सकृत।
एक द्वित्रिमुहुत स्यादेकभक्त दिने मुने ॥३४

अर्थ सूर्य के उदय काल और अस्तकाल इन दोनो समय तीन तोन नाडी प्रमाण काल छोडकर दिन में एक बार भोजन करना सो एक भक्त नाम का गुण है।

भावार्थ—इस एक भक्त की प्राप्ति के लिये जो गौचरो की जाती हे उसका काल एक दो और तीन मुहूर्त है। अयांत उत्कृष्ट गोचरी का काल एक मुहूर्त मध्यम गौचरो का काल दो मुहूर्त और जघन्य गोचरी का काल तीन मुहूर्त है।

नोट—सूर्य उदय बाद दो घड़ी में श्रावक पूजन आदि से निवृत नहीं होते है तब वह पड़गाहने को कैसे खड़ा रहता होगा ? क्या मुनिराज सूर्य उदय के बाद दो घडी में आहार ले सकते है ? कदापी नही।

आठवें नम्बर वाले क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले रागी को ? यथार्थ में यह सूत्र कर्म निर्जरा का है भाव निर्जरा के नही है। चित की शान्ति का कारण भाव निर्जरा है कर्म निर्जरा नही ? यहां परमार्थ सत्य है और सब उपचार मात्र है।

११—पृष्ठ २६७ पक्ति १ गाथा ७ मुक्त आत्माओ उर्ध्वगमन क्यों जाते हैं। विशेषार्थ पूर्व के अभ्यास से जिस प्रकार कुंभकार का चक्र लकड़ी के हटा लेने पर भी घूमता रहता है उसी प्रकार यह आत्मा भी कब मुक्त बनु कब सिद्धालय मे पहुंचूं इत्यादि प्रकार के संस्कार के कारण यह मुक्त जोव शरीर से छुटते ही ऊपर को जला जाता है।

नोट—कब मुक्त बनु कब सिद्धालय मे जाव यह तो राग पर्याय है जो सातवे गुणस्थान मे भी नही होनी चाहिये तब वह पर्याय वीतराग केवल ज्ञानी मे कैसे रहती होगी ? सम्यग्दर्शन का पूर्व प्रयोग मिथ्यात्व है तो क्या सम्यग्दर्शन में मिथ्यात्व प्रयोग रहते होगे ? वीतराग का पूर्व प्रयोग राग है तो क्या वह वोतराग दशा मे रहते होगे ? केवल ज्ञान का पूर्व प्रयोग अज्ञान है तो क्या वह पूर्व प्रयोग केवल ज्ञान में रहते होगे ? वर्तमान पर्याय में भूत पर्याय का प्राग

स्वभाव की ही होती है और त्रीकाल में पर्याय का अभाव है। पर्याय त्रीकाल नहीं होती है वह तो सादी ही होती हैं पर्याय का ज्ञान होता है किन्तु श्रद्धा नहीं।

१४—पृष्ठ १७७ पक्ति २ गाथा देश संयत्त गुण स्थान—

भावार्थ—११ प्रतिमाओं को मनुष्य ही धारण कर सकता है तिर्यंच नही।

नोट—क्या तिर्यंच प्रतिमा धारण नहीं कर सकता है? तिर्यंच भी पचम गुणस्थान वर्ती हो सकते हैं। सचेत भक्षण का भी त्याग करते है तो भी तिर्यंच प्रतिमा नही ले सकते है वह लिखना केवल उपचार है।

१५-पृष्ठ १८२ पंक्ति ४ गाथा १३-१४ अनिवृति करण संयत्त गुणस्थान का स्वरूप है।

भावार्थ—इस गुणस्थान मे होने वाले परिणामो के द्वारा आयुकर्म को छोड़ शेष सात कर्मों की गुण श्रेणी निर्जरा गुण सक्रमण स्थिति खडन और अनुभाग खंडन होता है।

नोट—अनिवृति गुणस्थान में सब जीवों का समान परिणाम होवे सब जीवों की पास में अलग अलग स्थिति वाले अनुभाग वाले मोहनोय कर्म छोड़कर

जो मुनिराज जगल मे रहते हैं उनको नगरी मे पहुचते तीन मुहूर्त टाईम लगते हैं वह सूर्य उदय के वाद एक मुहुर्त मे आचार्य से चर्या मे जाने की आज्ञा मागते है। जो मुनि को नगरी मे पहुचते दो मुहूर्त टाइम लगते है वह सूर्य उदय बाद दो मुहूर्त पीछे आचार्य से चर्या में जाने को आज्ञा मांगने है जो मुनिराज का नगरी में पहुचते एक मुहूर्त टाइम लगते है वह तीन मुहूर्त वाद आचार्य से चर्या मे जाने की आज्ञा मागते है किन्तु सूर्य उदय बाद एक पहोर वाद हा आहार ग्रहण करेगे ? यही राज मार्ग है।

१३—पृष्ठ १७५ पक्ति १७ गाथा ६ असंयत सम्यग्दृष्वि गुणस्थान का स्वरूप-भावार्थ इस गुणस्थान वाला जोव सम्यग्दृष्टि होने के कारण तत्त्वार्थ का दृढ श्रद्धानो होता है। पूर्वोक्त सप्तभय से मुक्त रहता है।

नोट—क्या सम्यग्दृष्टि को भय नही लगता ? भय तो राग की पर्याय है उनमे रागतो है। यदि भय नही है तो शस्त्र क्यो रखते है। सम्यग्दृष्टि को भय नही लगता वह केवल उपचार है। श्रद्धा से भय नही लगता वह भी यथार्थ नहो है श्रद्धा तो अभेद की होती है श्रद्धा से आत्मा मे सम्यग्दर्शन वीतरागता केवल ज्ञान नहो। क्योकि श्रद्धा अभेद अखण्ड अनादि अनन्त त्रीकाल

शुद्धि पत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९	१७	आदेश	उपदेश
१६	१७	ज्ञायिक	क्षायिक
४७	१९	पद	पर
६०	७	इस	इष्ट
६२	४	आदेश	उपदेश
६२	७	नसी	इसी
६५	१	दिचार	विचार
६९	१९	प्रतिशक्ष	प्रतिपक्ष
७९	२	भूल	भूत
९१	६	किसा	किस
१०२	१४	एश्न	प्रश्न
१०५	२१	कराता	कराता नही है ।
११८	२	स्वच्ष्टता	स्वचतुष्ट
१३२	३	गाड	गाढ
१५६	९	समव्य	स्वभाव
२२१	१७	दशा	दया
२२३	१०	प्रमोद	प्रमाद
२२४	१६	घानत	घातक
२३०	३	समर	समय

कर्मों रहते है। यदि ज्ञानावरण कर्म की स्थिति कान्ड होते होय अनुभाग कान्ड होते होय तो ग्यारहवे गुणस्थान से पडने वाले जीव का ज्ञान गुण मे वृद्धि होनी चाहिए किन्तु होती नही है। जिससे मालुम होते है कि प्रधान स्थिति कान्डक और अनुभाग कान्डक मोहनीय कर्म का ही होते है। पाप कर नर्क में जाते है वहा अवधि ज्ञान हो जाते है और मनुष्य मे मुनि पर्याय में भी नही हो पाते। सयम की साधना करने वाले जीव का ज्ञान क्षयोपशम हीन होता है और असयमी मिथ्यादृष्टि का ज्ञान क्षयोपशम विशेष होते है जिससे मालुम होते है कि प्रधान मोहनीय कर्म का ही स्थिति अनुभाग कान्डक होते है।

१६—पृष्ठ २०६ पंक्ति १५

प्राणिमात्र पर तथा व्रती पुरुषो पर अनुकम्पा करना इत्यादि साता वेदनीय कर्म के आस्रव के कारण है।

नोट—प्राणि मात्र पर दया अनुकम्पा होती है किन्तु व्रती पुरुषो पर दया अनुकम्पा नही होती है। वहा तो भक्ति होती है। प्रसस्त राग भक्ति प्रधान है और अनुकम्पा मे दया प्रधान है। भक्ति गुणवान की ही होती है दया प्राणी मात्र की होती है।

२३०	२१	भाव	नाव
२३१	१६	ज्ञानेगे	जानेगे
२४०	१६	रेखना	देखना
२५०	१३	न	ने
२५०	१५	घक्कर	चक्कर